आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

भवानीप्रसाद मिश्र



राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली

पहला संस्करण मई, १९६७

मूल्य तीन रुपये

प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट दिल्ली-६

मुद्रक हिन्दी मुद्रण प्रतिष्ठान द्वारा भारती मुद्रणालय दिल्ली-३२



जी

व

नी

पहला संस्करण मई १९६७

मूल्य तीन रुपये

प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट दिल्ली-६

हरि मुद्रण प्रतिष्ठान, द्वारा भारत मुद्रणालय दिल्ली-३२



जी

व

नी

मन को व्याकुल किया होगा। यहाँ उज्जैन में तत्कालीन राजनीतिक और साहित्यिक हलचलों का सम्पर्क उन्हें हुआ। शालेय पढ़ाई लिखाई को 'नवीन' जी ने कभी कुछ गिना नहीं। पढ़ने में वे विशेष योग्य नहीं थे लेकिन साहित्य समाज और राजनीति के खुले आसमान के नीचे आकर खड़े हो पाने का कोई अवसर उन्होंने कभी हाथ से नहीं जाने दिया।

एक दिन उन्होंने समाचारपत्र में लोकमान्य तिलक का वह आदेश पढ़ा जिसमें भारत की जनता को दिसम्बर १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया गया था। तिलक बालकृष्ण के हृदय-सम्राट थे। उन्होंने लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होना तय कर लिया। समस्या थी पैसों की किन्तु जैसे-तैसे उन्होंने पैसे जुटा लिए और नंगे पैर कंधे पर कम्बल हाथ में लाठी लेकर लखनऊ चल दिए। लखनऊ का नाम भर सुना था न किसी से जान पहचान थी न ऐसे यात्रा पटु ही थे कि अनजानी जगह को कुछ न गिनते। गाड़ी में ही एक महाराष्ट्रीय सज्जन से उनका परिचय हो गया और उन्हीं के साथ वे एक होटल में ठहर गए। सुबह वहीं होटल में उनका माखनलाल चतुर्वेदी से भी परिचय हुआ और यह परिचय शीघ्र ही घनिष्ठता में परिणत हो गया। श्री माखनलाल चतुर्वेदी के ही माध्यम से उनका श्री गणेशशंकर विद्यार्थी तथा मैथिलीशरण जी गुप्त से भी परिचय हुआ। निहायत दुबले पतले चश्मा लगाए तेजस्वी नवयुवक को देखकर बालकृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि, उनके काल्पनिक चित्र से गणेशजी का यह वास्तविक चित्र बिलकुल भी मेल नहीं खाता था।

'नवीन' जी कांग्रेस देखने आए थे किन्तु बड़ा प्रयत्न करने पर भी उन्हें पहले दिन कांग्रेस देखने के लिए टिकट प्राप्त न हो सका। तो भी न उन्होंने हार मानी और न निराश हुए। बाहर द्वार पर खड़े खड़े अधिवेशन की जितनी झलकियाँ ले सकते थे लेते रहे। जब पहले दिन का अधिवेशन समाप्त हुआ और लोकमान्य तिलक बाहर निकले नवीन जी भीड़ चीरते हुए, आँखों में आँसू भरे लोकमान्य के निकट पहुँच गए। उनके चरण स्पर्श किए और समझा कि लखनऊ आना सफल हो गया। विद्यार्थी को घटना का पता चला तो उन्होंने नवीन के लिए एक टिकट का प्रबन्ध कर दिया। 'नवीन' जी ने गणेशजी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता का अनुभव किया और थोड़े ही सम्पर्क में उन्होंने युवक बाल-

पहला संस्करण मई १९६७

मूल्य तीन रुपये

प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट दिल्ली-६

मुद्रक हरि मुद्रण प्रतिष्ठान द्वारा भारत मुद्रणालय, दिल्ली-३२



जी

व

नी

परिचय

व्यक्तित्व

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम मन में आते ही आँखों के सामने एक तराशे हुए आत्मा का चित्र खिंच जाता है। छः फुट लम्बा व्यायाम से सधाया-तपाया बलिष्ठ शरीर, विशाल वक्षस्थल, वृषस्कन्ध, दीर्घबाहु, कुछ लाली लिए हुए चिट्टा रंग, उन्नत भाल, नुकीली नासिका, बड़ी और पनी आँखें, खिंचे हुए होंठ और तज्जन्य प्रभाविशाली मुखमण्डल! नवीन जी को कई बार तो स्वतः हो जाता था। पौरुष सौन्दर्य के वे मानो आदर्श थे। उनको देखकर लगता था जैसे किसी सही कल्पनाशील मूर्तिकार ने अपनी सारी कल्पना को समेट कर एक मूर्ति गढ़ना तय किया था। साहित्य जगत में ही नहीं वहाँ भी उनके समान प्रियदर्शन व्यक्ति मिलना सरल नहीं था।

इस सिलसिले में सन् १९३३ की एक घटना याद आती है। प्रयाग में हिन्दी मेला मनाया जा रहा था। उसमें कवि दरबार का भी आयोजन किया गया। पंत निराला तथा नवीन जी की भूमिकाओं के लिए व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ी। पंत और निराला के लिए तो वांछित व्यक्ति मिल गए लेकिन नवीन के लिए कोई उपयुक्त पात्र नहीं मिला। कद शरीर में तो कोई स्वर में असाम्य लगता। संयोजक कहते थे नवीन कैसे? 'नवीन कनक के लिए बाणी वृषकन्धा केहरि ध्वनि बलनिधि बाहु विशाल।' अन्त में निराश होकर नवीन जी की भूमिका छोड़ देनी पड़ी।

साफ धुला खद्दर का कुर्ता पाजामा पहने, सिर पर तिरछी टोपी दिए, मुँह में पान दबाए, आहिस्ता आहिस्ता गम्भीरता से सिगरेट पीते कभी किसी समाज में पहुँच जाते तो बड़े से बड़ा आदमी छोटा लगने लगता था। उनके

परिचय

व्यक्तित्व

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम मन में आते ही आँखों के सामने एक तराशा हुआ आदमी का चित्र खिंच जाता है। छः फुट लम्बा व्यायाम में सधाया तपाया बलिष्ठ शरीर, विशाल वक्षस्थल, वपस्कन्ध, दीर्घबाहु, कुछ लाली लिए हुए चिट्टा रंग, उन्नत भाल, नुकीली नासिका, बड़ी और पैनी आँखें, खिंचे हुए होंठ और तेजयुक्त प्रभावशाली मुखमण्डल। 'नवीन' जी को कई बार तो देखते ही बनता था। पौरुष और सौन्दर्य के वे मानो आलय थे। उनको देखकर लगता था जैसे किसी सही कल्पनाशील मूर्तिकार ने अपनी सारी कल्पना को समेट-कर एक मूर्ति गढ़ना तय किया था। साहित्य जगत में ही नहीं, कहीं भी उनके समान प्रियदर्शन व्यक्ति मिलना सरल नहीं था।

इस सिलसिले में सन् १९५३ की एक घटना याद आती है। प्रयाग में द्विवेदी मेला मनाया जा रहा था। उसमें कवि दरबार का भी आयोजन किया गया। पंत, निराला तथा नवीन जी की भूमिकाओं के लिए व्यक्तियों की आवश्यकता थी। पंत और निराला के लिए तो उचित व्यक्ति मिल गए लेकिन नवीन के लिए कोई उपयुक्त पात्र नहीं मिला। कोई शरीर से तो कोई स्वर में अयोग्य लगता। संयोजक कहते, 'ये नवीन बनेंगे? 'नवीन बनने के लिए चाहिए वृषभस्कन्ध, केहरि ध्वनि, बलनिधि बाहु विशाल।' अन्त में निराश होकर नवीन जी की भूमिका छोड़ देनी पड़ी।

साफ धुला खद्दर का कुर्ता पाजामा पहने, सिर पर तिरछी टोपी लिए, मुँह में पान दबाए, आहिस्ता आहिस्ता गम्भीरता से सिगरेट पीते कभी किसी समाज में पहुँच जाते तो बड़े से बड़ा आदमी छोटा लगने लगता था। उनके

आसपास हँसी और उल्लास की तो जैसे बरसात ही होती रहती थी। आत्मीयता ऐसी कि पहली बार मिलकर ही मुझे लगा था कि नवीन जी ने मुझे नये आदमी की तरह ग्रहण नहीं किया है। उनमें निरर्थक व्यवहार-कुशलता और बनावटी शिष्टता नहीं थी। सबसे स्वाभाविक आत्मीयभाव से मिलते थे। उनके लिए कोई भी अविश्वसनीय नहीं था। कहते हैं कभी गुस्से में आ जाते तो सारा शरीर कांपने लगता, चेहरा तमतमा जाता, आंखें जल उठतीं, किन्तु उनका यह रौद्र शंकरी रूप विरल था। मुझे उसे देखने का भाग्य नहीं मिला।

जीवन उनका संघर्षों की एक कहानी है। शायद जिस दिन से होश संभाला अपने बल जान तक वे भीतर बाहर जूझते ही रहे। ८ दिसम्बर सन १८९७ को मध्यभारत के शाजापुर परगने के भियाना गांव में एक अत्यन्त दरिद्र भगवद्भक्त वैष्णव ब्राह्मण जमुनादास के घर पैदा हुए। नवीन जी ने लिखा है "मेरी माता कहा करती हैं कि माया के बाधन के बाड़े में अपने राम ने जन्म लिया था। मेरे पिता बहुत गरीब थे। मेरे जन्म के समय सिवा थाली बजने के और कुछ धूमधाम नहीं हुई।"

नवीन जी का बचपन आर्थिक अभाव एवं विपन्नता में बीता। और ११ वर्ष की अवस्था तक पढ़ाई का कोई समुचित प्रबन्ध न हो सका। ११ वर्ष की अवस्था में उनकी शिक्षा आरम्भ हुई। पिता उन दिनों नाथद्वारा में थे। मां शाजापुर में अनाज पीसकर कुछ पैसे कमा लेती थीं। पैरों में जूते पहनना एक आरामतलबी समझी जाती थी इसलिए सदा नंगे पैरों रहना था। पैबन्द लगे कपड़े पहनना और साल में सिर्फ दो धोतियों पर गुजर करना एक मामूली और बिलकुल स्वाभाविक बात थी। किताबें दूसरों से मांगकर पढ़नी पड़ती थीं। उन्होंने शाजापुर से मिडिल स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की।

और चूंकि आगे पढ़ना चाहते थे शाजापुर के पास, उज्जैन चले गए और वहां के माधव विद्यालय से हाई स्कूल की परीक्षा पास की। उज्जैन में 'नवीन' जी को कुछ योग्य उत्साही मित्र तथा दिशा सुझाने और उत्साह प्रदान करने वाले अध्यापक मिल गए और 'नवीन' जी सपने देखने लगे। बचपन में वैष्णव मां उन्हें अष्टछाप के पद गा गाकर सुलाती थीं, अवचेतन मन पर उनका असर पड़ता रहा होगा। शाजापुर में उन्होंने आर्यसमाज सभा का समूचा पुस्तकालय चाट डाला था, अवश्य ही एक नये सामाजिक आदर्श ने उनके किशोर

मन को व्याकुल किया होगा। यहां उज्जैन में तत्कालीन राजनीतिक और साहित्यिक हलचलों का सस्पर्श उन्हें हुआ। शालेय पढ़ाई लिखाई को 'नवीन' जी ने कभी कुछ गिना नहीं। पढ़ने में वे विशेष योग्य नहीं थे लेकिन साहित्य समाज और राजनीति के खुले आसमान के नीचे आकर खड़े हो पाने का कोई अवसर उन्होंने कभी हाथ से नहीं जाने दिया।

एक दिन उन्होंने समाचारपत्र में लोकमान्य तिलक का वह भाषण पढ़ा जिसमें भारत की जनता को दिसम्बर १६१६ की लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया गया था। तिलक बालकृष्ण के हृदय सम्राट थे। उन्होंने लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होना तय कर लिया। समस्या थी पैसा की किन्तु जमे-तैसे उन्होंने पैसे जुटा लिए और नंगे पैर कन्धे पर कम्बल, हाथ में लाठी लेकर लखनऊ चल दिए। लखनऊ का नाम भर सुना था, न किसी से जान पहचान थी न ऐसे यात्रा पटु ही थे कि अनजानी जगह को कुछ न गिनते, गाड़ी में ही एक महाराष्ट्रीय सज्जन से उनका परिचय हो गया और उन्हीं के साथ वे एक होटल में ठहर गए। सुबह वहीं होटल में उनका माखनलाल चतुर्वेदी से भी परिचय हुआ और यह परिचय शीघ्र ही घनिष्टता में परिणत हो गया। श्री मखनलाल चतुर्वेदी के ही माध्यम से उनका श्री गणेश शंकर विद्यार्थी तथा मैथिलीशरण जी गुप्त से भी परिचय हुआ। निहायत दुबले पतले, चश्मा लगाए तेजस्वी नवयुवक को देखकर बालकृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि उनके काल्पनिक चित्र से गणेशजी का यह वास्तविक चित्र बिलकुल भी मेल नहीं खाता था।

'नवीन' जी कांग्रेस देखने आए थे किन्तु बड़ा प्रयत्न करने पर भी उन्हें पहले दिन कांग्रेस देखने के लिए टिकट प्राप्त न हो सका। तो भी न उन्होंने दुःख माना और न निराश हुए। बाहर द्वार पर खड़े खड़े अधिवेशन की जितनी झलकियां ले सकते थे लेते रहे। जब पहले दिन का अधिवेशन समाप्त हुआ और लोकमान्य तिलक बाहर निकले नवीन जी भीड़ चीरते हुए, आंखों में आंसू भर लोकमान्य के निकट पहुंच गए। उनके चरण स्पर्श किए और समझा कि लखनऊ आना सफल हो गया। विद्यार्थी को घटना का पता चला तो उन्होंने नवीन के लिए एक टिकट का प्रबन्ध कर दिया। नवीन जी ने गणेशजी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता का अनुभव किया और थोड़े ही सम्पर्क में उन्होंने दुबके बात-

कृष्ण को इतना प्रभावित किया कि वह सदा के लिए उनका भक्त हो गया। जब नवीन जी लखनऊ से चलने को हुए, विद्यार्थीजी को यह जानकर बड़ा आश्चर्य एवं दुःख हुआ कि बालकृष्ण कड़ाके की ठण्ड सर्दी में सिर्फ एक कम्बल पर अपना गुज़ारा करता रहा।

नवीन जी की लखनऊ यात्रा अनेक दृष्टियों में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। उनके वास्तविक जीवन का आरम्भ ही यहीं से समझना चाहिए। गणेश शंकर विद्यार्थी का सम्पर्क होना नवीन जी के जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। यही वह धुरी है बाद में जिस पर नवीन का व्यक्तिगत साहित्यिक और राजनीतिक जीवन घूमता रहा।

लखनऊ से उज्जैन वापस आकर बालकृष्ण ने मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे पढ़ने की इच्छा तो बहुत थी किन्तु कोई उपाय दिखाई नहीं देता था। सोचते सोचते बालकृष्ण को लगा क्यों न कानपुर विद्यार्थीजी के पास चला जाऊं। वे जैसा कहेंगे वैसा करूंगा। उन्होंने कानपुर जाने की अपनी यह इच्छा जब मां पर प्रकट की तो मां ने कहा "बेटा हम लोग एेसे यहां हैं कि तुझे कानपुर भेजकर पढ़ा सकें। तूने काफी पढ़ लिया है। यहीं भगवान का भजन कर। प्रभु जो कुछ रूखा सूखा दे उसमें संतोष मानकर हम उनका ही भजन करेंगे बेटा।" बालकृष्ण का भविष्यद्रष्टा स्वप्नशील मन मां की इस विवेचना से निराश नहीं हुआ। उन्होंने कहा "बीजी, भगवान की भारी तू भर। और मुझे भारतमाता की भारी भरने के लिए मुक्त कर दे।" नवीन जी ने अपनी जीवनी में लिखा है "मेरे जीवन में लखनऊ कांग्रेस की मेरी यात्रा और परीक्षा के बाद कानपुर की यह यात्रा बहुत महत्त्वपूर्ण साबित हुई। उन्होंने मेरे जीवन का प्रवाह बिल्कुल ही बदल दिया।"

गणेशजी ने बालकृष्ण को स्थानीय क्राइस्ट चर्च कालेज में प्रवेश दिला दिया और बीस रुपये मासिक की एक ट्यूशन का प्रबन्ध भी कर दिया। नवीन जी पढ़ते रहते और गणेशजी के प्रसिद्ध पत्र 'प्रताप' में काम भी करते। इस प्रकार गणेशजी के संरक्षण में नवीन जी का राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ हो गया।

इस काल में नवीन जी ने राजनीति, इतिहास, दर्शन, धर्म तथा संस्कृत अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य का सामान्य अध्ययन किया। थोड़े ही समय में कानपुर

के साहित्यिक और राजनीतिक क्षेत्र में नवीन जी ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। कानपुर के मजदूर आंदोलन में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया। एक कवि के रूप में भी वे जल्दी ही ख्याति प्राप्त प्रसिद्ध हो गए। उन दिनों उनकी 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ' कविता जनता का कण्ठहार बनी हुई थी। निरन्तर लिखने का सिलसिला तेजी से चल रहा था मगर गांधी बाबा की आंधी चल पड़ी और संयुक्त प्रदेश में सत्याग्रहियों का जो पहला जत्था तैयार हुआ उसमें बालकृष्ण शर्मा नवीन का नाम मौजूद था। अन्त में एक दिन साप्ताहिक 'प्रताप' में प्रकाशित हुआ—"क्राइस्ट चर्च कालेज कानपुर के निम्नलिखित विद्यार्थियों ने कांग्रेस के प्रस्तावानुसार कालेज छोड़ दिया है—(१) शिवप्रसाद द्विवेदी, चतुर्थ वर्ष (२) हनुमानप्रसाद शुक्ल, चतुर्थ वर्ष (३) उमाशंकर दीक्षित, तृतीय वर्ष (४) श्री बालकृष्ण शर्मा, चतुर्थ वर्ष।

सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने पर उन्हें सन् १९२१ में पहली बार डेढ़ वर्ष की सजा दी गई। उन्हें बदल बदलकर कई जेलों में भेजा गया। इस जेल यात्रा के परिणामस्वरूप नवीन जी पं० जवाहरलाल नेहरू, आचार्य कृपलानी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन आदि देश के शीर्षस्थ नेताओं के सम्पर्क में आए।

'नवीन' जी के जेल जाने की खबर सुनकर उनके पिताजी दौड़े-दौड़े आए और बालकृष्ण से क्षमा मांग कर छूट आने की प्रार्थना की। लेकिन बालकृष्ण तो अपना जीवन देश को समर्पित कर चुका था। पिता निराश होकर लौट आए। मगर इस बात पर उन्होंने मात्र भर में संताप व्यक्त किया कि बालकृष्ण जेल में वैष्णव धर्म का निर्वाह कर रहा है। नवीन जी ने पिता से जब मुलाकात ली तो पिता ने देखा कि बेटा माथे पर तिलक, गले में माला और पांवों में खड़ाऊं पहने हुए है।

'नवीन' जी को छः बार जेल यात्रा करनी पड़ी। लगभग नौ वर्षों का समय उन्होंने जेलखाने में बिताया। जेलखाना राजनैतिक कैदी का विश्वविद्यालय ही समझिए। बालकृष्ण शर्मा नवीन के लिए तो वस्तुतः लखनऊ जेल ऐसा ही सिद्ध हुआ। यहां पण्डित जवाहरलाल नेहरू से उन्होंने अंग्रेजी और ज्यामिति पढ़ी। और नवीन जी ने जवाहरलाल को कवायद सिखाई। 'उर्मिला' महाकाव्य का प्रथम सर्ग उनकी प्रथम जेलयात्रा के समय ही लिखा गया था और सन् १९३२ के ढाई वर्ष के कारावास काल में इसकी समाप्ति हुई थी। उनकी रचनाओं पर भी हुई तिथियां

कई स्थानों से पता होता है कि उनकी अधिकांश कविताएँ जेलयात्रा की चहारदीवारी में बैठकर ही लिखी गई हैं। बाहर आकर तो उन्हें राजनीतिक हलचल और 'प्रताप' के सम्पादन से ही अवकाश नहीं मिल पाता था और यह तो तय ही है कि और चाहे जो काम भाग-दौड़ में हो जाए कविता भाग-दौड़ की चीज नहीं है। उसे तो आलस्य में भी कुछ अधिक लापरवाही कर सकने की सुविधा चाहिए।

विद्यार्थीजी की मृत्यु के बाद उनके स्मारक बनाने की दृष्टि से एक निधि संग्रह समिति भी बनी और उसकी लगभग सारी जिम्मेदारी नवीन जी पर डाली गई। हरिजन सेवक में स्वयं गांधीजी ने लोगों को निधि में रकम भेजने का आह्वान करते हुए आश्वस्त भाव से कहा, 'जिस संस्था का संरक्षक बालकृष्ण हो उसके बारे में सोच विचार हो क्या।'

एक अरसे तक नवीन जी का कार्यक्षेत्र कानपुर ही रहा। उनका पहला विवाह १८ वर्ष की अवस्था में हो गया था। लेकिन गौने से पहले इनकी पत्नी इस संसार से विदा हो गई। सुनते हैं कानपुर में ही किसी कन्या से इनका प्रेम हो गया था, दोनों ने पारस्परिक विवाह करने की शपथ ली थी। अंत में कन्या के पिता ने अनेक कारण दिखाकर किसी अन्य व्यक्ति से उसका सम्बन्ध करने के लिए उसे राजी कर लिया। इस घटना से उन्हें जो आघात पहुँचा और उसके परिणामस्वरूप उनकी कविता में जो एक विचित्र वेदना घर कर गई वह उन्हें सौ असीरियों में भी आज़ाद रहना सिखा गई। मुझे तो उनका अनिकेतनत्व भाव इसी वेदना का उदात्तीकरण लगता है।

गांधीजी के प्रति उनमें अपार श्रद्धा थी। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के शब्दों में गांधीजी 'के वे मजनूं थे'। यह सच ही है। गांधीजी के संकेत मात्र पर वे अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार हो जाते थे। जब साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध गांधीजी ने आमरण अनशन किया तब नवीन जी बड़े चिंतित हुए थे लेकिन उनके लिए कोरी चिंता का कोई अर्थ नहीं था। जितने दिनों तक गांधीजी का अनशन चला उन्होंने भी उतने दिनों तक जल के अतिरिक्त कुछ ग्रहण नहीं किया।

गांधीजी में उनकी अगाध श्रद्धा थी किंतु वे उनकी आलोचना करने में भी नहीं चूकते थे। हिन्दी के प्रश्न पर वे गांधीजी से सहमत नहीं थे। कांग्रेस के अध्यक्षीय चुनाव के लिए गांधीजी ने सुभाष के विरुद्ध डा० पट्टाभि सीतारमैय्या

को उठा दिया था, लेकिन नवीन जी ने अपना वोट पट्टाभि को न देकर सुभाष को दिया था। यह घटना उनकी स्वातन्त्र्यप्रिय प्रवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। बम्बई कांग्रेस में भारत छोड़ो आन्दोलन के सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित हुआ। नवीन जी उसमें कुछ संशोधन प्रस्तुत करना चाहते थे लेकिन ऐसा करने की उन्हें अनुमति नहीं मिली, केवल अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें बीस मिनट का समय अवश्य मिल गया। इन बीस मिनट के समय में उन्होंने कांग्रेसी नेताओं की खूब आलोचना की। वे पूर्णतः गांधीवादी नीति के पक्ष में नहीं थे। वे शाप और शर दोनों में विश्वास रखते थे। वे सशस्त्र क्रान्तिकारियों के प्रति भी सहानुभूति रखने थे। सत्याग्रह आन्दोलन के असफल हो जाने पर उन्हें कितना दुःख हुआ था, यह उनकी तात्कालिक रचनाओं में पूर्ण रूप में चित्रित है। इस असफलता पर उन्होंने लिखा

> आज खड्ग की धार कुण्ठिता है खाली तूणीर हुआ
> विजय-पताका झुकी हुई है लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ
> × × ×
> हलचल के बीच की वाणी रही मेरी प्रकम्पित—
> और विप्लव भी न कर पाए सुयशमय गीत खण्डित—
> साध की यह किन्तु देखो कण्ठ है आरोप मण्डित
> और मैं बस रो रहा हूं हिचकियां के राग गा गा।'

स्वातन्त्र्य संग्राम में उनका योगदान बहुमुखी तथा अद्वितीय था। उनमें क्रान्तिकारियों के समान आत्मत्याग और सच्चे योद्धा के समान शौर्य था। देश के लिए उन्होंने कुछ भी त्यागने में मोह नहीं किया, अपना घरबार, पढ़ाई लिखाई सब कुछ। कांग्रेस संगठन और देश की जनता में इसीलिए नवीन जी जैसा आदर और स्नेह पाते थे, वैसा पाने का भाग्य विरले जनसेवक का ही होता है। वे कई बार उत्तरप्रदेश की कांग्रेस समिति के अध्यक्ष और महामन्त्री चुने गए थे और १९४५-४६ की केन्द्रीय व्यवस्थापिका के चुनाव में तो उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वी को ८५ के मुकाबिले १७०९८ मतों से पराजित किया था।

सन् १९४७ में देश के स्वतन्त्र हो जाने पर वे संविधान परिषद् के सदस्य मनोनीत हुए। १९५२ के प्रथम आम चुनावों में वे कानपुर से लोकसभा के लिए निर्वाचित होकर आए। सन् १९५५ में संसद् द्वारा नियोजित भाषा आयोग के

के वरिष्ठ सदस्य थे। सन् १९५७ में राज्य सभा के लिए उत्तरप्रदेश से निर्वाचित होकर आए तथा सन् १९६० में दुबारा राज्य सभा के सदस्य बने और अपनी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण की उपाधि से भी विभूषित किए गए।

अनेक मित्रों के विरोध करने पर भी उन्होंने ५१ वर्ष की आयु में जाति प्रान्त एवं आयु के बन्धनों को तोड़कर दूसरा विवाह किया और उनका दाम्पत्य जीवन सफल एवं सुखद रहा। यह ठीक है कि वे गृहस्थी के लिए नहीं बने थे वे स्वतन्त्र और फक्कड़ थे घर की जरूरतों के प्रति गैर जिम्मेदार तक थे इसलिए कई बार घर के वातावरण में एक तनाव आ जाता था। उनकी परवर्ती कविताओं में प्रायः यह सिद्ध करने की कोशिश की जाती है कि वे वैवाहिक बन्धन में फंसकर तन एवं मन दोनों से ही अत्यन्त व्यथित हो गए थे। मैं इस कोशिश को ठीक नहीं मानता। प्रायः 'या नूतनयुगन ग्रहि आलिंगित है जीवन' नाम की लम्बी कविता इसका प्रमाण मानी जाती है। किन्तु मैं जानता हूं कि जिन दिनों यह कविता लिखी गई थी और जहां तक मेरा खयाल है जिन दिनों यह आजकल में प्रकाशित हुई थी उन दिनों उनका गार्हस्थ्य जीवन सब प्रकार से सुखी था। कभी रश्मि और सरला को तरल वाणी में पुकारते हुए उनका मन नहीं भरता था। 'हम एक भले थे किन्तु व्यर्थ ही दो हो बैठे' आदि पंक्तियों का भी इस तरह पेश करना मानो वे इस निष्कर्ष का अकाट्य प्रमाण हों कुल मिलाकर एक भोंडी कोशिश है।

स्वतन्त्रता के बाद का उनका राजनीतिक जीवन अवश्य निष्क्रिय सा हो गया था। भारत की जनता के लिए उन्होंने जो स्वप्न देखे थे उनका कहीं भी पता नहीं था। स्वतन्त्र हो जाने पर भी भारत की पददलित मूक जनता तिलमिला रही थी। विधान बदल गया था लेकिन उन्हें प्रशासन बदला हुआ नहीं लगता था। वे त्याग और तपस्या के वातावरण में पले थे इसलिए एक सच्चे सिपाही के समान अपने कर्तव्य को निभाते रहे। उन्होंने स्वतन्त्रता के पश्चात् अपनी सेवाओं की हुंडी भुनाने का प्रयत्न नहीं किया इसीलिए लोगों ने उन्हें असफल राजनीतिज्ञ की संज्ञा दी। सच कहें तो वे राजनीतिज्ञ थे ही नहीं। वे एक सहृदय भावुक रस डूबे फकीर थे जिन्होंने अपनी तल्लीनता में जो सामने आया उसे निभाया और उसे अपना सर्वस्व दिया फिर वह चाहे राजनीति थी चाहे साहित्य चाहे कोई

व्यक्ति। मन और बुद्धि से व कही रह हा आत्मा उनकी सदा यश प्रश्न हो पूछती रही और उमन उन्ह क्षणिक जगहो म थिर होकर बैठन ही नहीं दिया। वस व क्या नहीं थे। कवि और राजनेता होन क साथ व एक अच्छे गद्यकार भी थ। समय सशम प्रौढ ओजपूर्ण एव शक्तिशाली गद्य लिखन म इनका सानी नही था। उनकी गद्य शक्ति का अन्दाज कविता-सग्रहो की भूमिकाओ साहित्य समारोहो के प्रकाशित उनक अध्यक्षीय भाषणो और 'प्रताप' क लेखो और सम्पादकीयो मे सा लगता ही है जो उनक प्रौढ काल की रचनाए थी, किन्तु उनकी पहली ही प्रकाशित गद्य रचना सतू नामक कहानी से भी यह बात साफ हो जाती है कि उनकी उस दिशा म भी अनन्त सम्भावनाए थी। यह कहानी नवीन जी न सन् १९१७ म 'सरस्वती' म प्रकाशनाथ भेजी थी और आचाय महावीरप्रसाद द्विवदी को उसकी भाषा भाव आदि की गम्न स उसक मौलिक होन म सदह हुआ था और उन्होने नवीन' जी को लिखकर पुछवाया था कि कहानी किसी बगला कहानी का अनुवाद तो नही है। बगला की एसी ही धाक थी उन दिनो। उनक भाषणो म तो एक अनोखा ओज और विद्वत्ता होती थी, व घटो धाराप्रव ह बोलत रहत थ। उनकी वाणी युवको क हृदयो को भकभोरकर रख देती थी। दिनकर न लिखा है 'जब उम नर शादूल के बोलन की बारी आती तो बादलो म दरारें पड जाती छनें चरमरान लगती और सत्य का प्रकाश अपन स्वाभाविक रूप म खुलकर बाहर आ जाता।

उनक कविता पाठ का ठाठ तो निराला ही था। वाणी म अजीब आकषण था जो किसीको भी अप्रभावित नही छोडता था। जब वे भाषण दत तो जस अगारे बरसात। जब व पालथी मार रीढ सीधी कर सीना तानकर ओजस्वी स्वर म कविता पाठ करत तो श्रोतागण भी उनक साथ झूम उठत। वे पूरी तन्मयता के साथ कविता पन्त थे कभी कभी कविता सुनात-सुनात उनक नत्र आद्र हो जात थ। भक्तो क पदो को गात हुए भी व भावविह्वल हो जात थ। दसरा का 'भणित' सुनकर उनका भाव विभोर होना तो उन्ह उन वर पुरुषो म अग्रगण्य ही बना देता है जो बहुत जग नहीं।

आन्दोलन क युग म उनकी पत्रकारिता तलवार की चलती थी। सरकार राष्ट्रीय पत्रो एव पत्रकारो को हर प्रकार म तग करन म लगी हुई थी लकिन नवीन न सच और सो भी पूरे जोर क साथ कहने म कभी आगा पीछा नहीं

किया। बचपन सखा के कारण उन्हें तत्कालीन सरकार ने तीन चार बार जेल यात्रा की सजा दी थी। अन्याय का दमन करने और न्याय का पक्ष लेने में वे सदा दृढ़ और आग्रही रहे।

भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का जो सम्मानित पद प्राप्त हुआ है उसमें नवीन जी का योगदान अविस्मरणीय है। उनके लिये हिन्दी समूची राष्ट्रीयता ही थी और इसीलिए उसके लिए उन्होंने बड़े से बड़े व्यक्तियों से टक्कर ली बड़े से बड़े विरोध का सामना किया। संविधान परिषद् के दिनों में जिन्होंने उनको काम करते देखा है वे जानते हैं नवीनजी के हृदय में हिन्दी के प्रति कितनी आग थी। हिन्दी के प्रश्न पर अनेक बार नेहरूजी से भी उनकी झड़प हो जाती थी। वास्तव में उनके बिना विपक्ष में संसद में हिन्दी निरावलम्ब सरस्वती हो गई है। [1]

नवीन जी महापुरुषों में भी महापुरुष थे। देवता कहना उनके मानव-तत्त्व को अपमानित करना होगा। उनका मानव के दुःख सुख हर्ष विषाद गुण अवगुण को क्या समझे। जो भी उनके सम्पर्क में आया सम्पन्न और सार्थक हुआ।

कोई भी व्यक्ति शीघ्र ही अपने को उनके परिवार का बना ले सकता था इतना उदार था उनका मन इतना विशाल था उनका आँगन। परिचय शीघ्र ही घनिष्ठता में बदल जाता। मित्रता को वे व्यावहारिकता के स्तर पर न लेकर पारिवारिक स्तर पर लेते थे। उन जैसा सहायक कृपालु मित्र पाना वास्तव में बहुत बड़ा सौभाग्य था। मित्रों के लिए तो वे अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार हो जाते थे। गुप्तजी ने लिखा है गणेश शंकर में जैसे अपना लेने की सहज शक्ति थी वैसे ही बालकृष्ण में अपना हो जाने की। ये मौलिकता दोनों का नैसर्गिक गुण था। एक में स्वीकरण की क्षमता थी दूसरे में समर्पण की क्षमता। यदि उनके साथ किसी ने कोई एहसान कर दिया तो जन्म भर उसके कृतज्ञ रहे। जिसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई उसके चरणों की धूल बन गए और अकिंचनों को भी स्नेह से दुलार कर आसमान पर चढ़ा दिया।

अपने विरोधियों के प्रति भी वे उदारता का व्यवहार करते थे। पीड़ा पहुँचाने वालों को हृदय से लगा लेने की उनमें अपार क्षमता थी। उनका द्वेष गलत सिद्धान्त के प्रति हो सकता था किसी व्यक्ति के प्रति नहीं।

---

[1] मैथिलीशरण गुप्त

वे जन्मजात विद्रोही थे। वे जिसे गलत समझते उसका खुलकर विद्रोह करना उनका धर्म था। अनुचित बात को वे किसी मूल्य पर भी सहन को तयार नहीं हो पाते थे। कहते हैं, पहले गणतन्त्रीय कांग्रेस मंत्रिमण्डल में नेहरूजी ने उन्हें उपमन्त्री बनने के लिए आमन्त्रित किया था लेकिन उन्होंने किसी निश्चित कारण के आधार पर इसे स्वीकार नहीं किया। अपने विद्रोही स्वभाव के कारण वे १९५४ में ५ मास के लिए कांग्रेस से भी पृथक कर दिए गए थे बाद में स्वयं जवाहरलाल जी ने इस निर्णय पर हरताल फेरी। वे आजीवन पुरातन रूढ़ि नीतियों से संग्राम करते रहे। कभी बंधाई लीक पर चलने में वे अपना अपमान समझते थे। उनका जीवन भयंकर संघर्षों में बीता। फिर भी उन्होंने कभी मानना से तालन नहीं खाया।

एक ओर सहयोग और विनम्रता तो दूसरी ओर सिद्धान्त के प्रति दृढ़ता और स्वाभिमान, एक ओर दार्शनिकों की सी गम्भीरता तो दूसरी ओर बालकों की सी सरलता, एक ओर फक्कड़पन दूसरी ओर शालीनता, एक ओर तलवार तो दूसरी ओर पुचकार एक ओर गजराजों से टकराने का साहस तो दूसरी ओर चींटियों से दब जाने का भाव एक ओर अंगारों का ताप तो दूसरी ओर सुमनों का पराग, एक ओर घनगर्जन तो दूसरी ओर फुहारों की रिमझिम एक ओर ताण्डव तो दूसरी ओर लास्य, एक ओर विष में हलाहल तो दूसरी में अमृत, अजीब विरोधी शक्तियों का सम्मिश्रण थे श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन।

अहंकार और मद अभिमान तो उन्हें छू तक नहीं गया था, यही कारण है कि वे अपने मित्रों और बड़ों से भी कहने सुनने में नहीं चूकते थे। हाज़िर जवाबी में इतने पटु कि दूसरा चुप ही रह जाए। एक बार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उनसे बैसवारी में कहा "काहे हो बालकिसन तुम्हार यू प्रयसी कहाँ रहत है जे करे बारे में तुम्हई सब सजनी सखी सलोनी प्रान प्रान लिखा रहत हो?" नवीन जी ने धारे में उत्तर दिया "अब तुम तुम्हें कसा का करिहो इन सजनिन का मरम जानि के।" उनके कहने में कटुता न होकर मधुर चुटकी भर हो सकती थी।

नवीन जी पुरातन के स्थान पर नवीनता की स्थापना के पक्षपाती थे किन्तु उनके विश्वास की इमारत की नींव भारतीय संस्कृति ही थी। इसीलिए उन्हें मावस के बजाय गांधी और हिंदुस्तानी के बजाय हिन्दी ठीक लगते थे।

वे अत्यन्त भावनाशील व्यक्ति थे। प्रेम को वे अन्तःकरण की शाश्वत प्रवृत्ति

मानते थ। उनका हृदय कोमल एव निश्छल था। उनकी भावुकता सबका हित करना जानती थी किसीका ग्रहित करना नहीं। किसीको भी दु खी देखकर उन्हें दु ख होता था और अपने सामर्थ्य से बाहर जाकर भी उसकी सहायता करने का भरसक प्रयत्न करते थ। उनकी उदारता कई बार तो मित्रों और परिवार के लिए कष्टकारक हो जाती थी। किसी किसी बार तो अपने पास कुछ न होने पर वे अपने मित्रों से मागकर सहायता कर देते थे। एक बार एक विद्यार्थी ने परीक्षा शुल्क के ग्रभाव में उसका क्या कुछ नुकसान हो जाएगा यह बताकर कुछ रुपये मागे नवीन जी के पास पसे नहीं थे उन्होंने उसी समय अपने एक मित्र से कुछ रुपये उधार लेकर और उस विद्यार्थी को दे दिए। मित्र महोदय ने उसके चले जाने पर पूछा नवीन जी हो सकता है यह विद्यार्थी झूठ ही बोल रहा हो। नवीन जी ने उत्तर दिया भाई बहाना झूठा हो सकता है आवश्यकता तो सच्ची होगी। मित्र महोदय का श्रद्धा से सिर झुक गया।

नवीन जी फकीर बादशाह थे। जीवन भर वे अर्थाभाव में रहे। प्रताप परिवार से इन्हें ५०० रुपया मासिक मिलता था। लेकिन इस रकम का अधिकांश असहाय परिवारों के ही काम आता था नवीन जी उसमें से एक भी पसा अपने काम में नहीं लेते थे। आयकर का हक तक अवश्य वे उसे अपनी आय मानते थे। अपनी निर्धनता और अनिकेतनता पर उन्हें नाज था। संग्रह के नाम से तो उन्हें घृणा ही थी। वे कहा करते थे मेरा शरीर भिक्षान्न से पोषित है अत मुझे संग्रह करने का क्या अधिकार है। वे देते थे लेकिन उसके बदले में धन्यवाद की भी कभी उन्होंने अपेक्षा नहीं की क्योंकि यह वे किसीपर एहसान मानकर नहीं अपना कर्तव्य मानकर करते थे। बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में मनुजता सहृदयता परदु खकातरता और उदारता की दृष्टि से नवीन जी का स्थान वर्तमान लेखकों और कवियों में सबसे ऊचा है। जिसने क्षण भर उनका सम्पर्क पाया जीवन पर्यन्त उन्हें भुला नहीं सका।

नवीन के अंतिम दिन बड़े कष्टमय रहे। तन को रोग और मन को कलश दोनों ने मिलकर अलमस्त नवीन को निरीह बना दिया था। १९५५ से लेकर मृत्यु पर्यन्त वे बीमार से ही रहे। इन चार पाच वर्षों में उन्हें अनेक बार अस्पताल में दाखिल होना पड़ा। उनके ऊपर पक्षाघात के तीन आक्रमण हुए। पक्षाघात के अतिरिक्त हृदय रोग रक्तचाप और सम्भवत फेफड़े का कैंसर आदि अनेक

बीमारियों ने एक साथ उनपर आक्रमण किया था। बीमारियों के चंगुल में एक बार फँसकर वे छूट ही नहीं। उनकी वाणी चली गई थी एक हद तक स्मृति भी। हाय-पैर ता, स्वर शक्तिहीन हो ही गए थे। वह भव्य मुखमण्डल पीला ज्योतिपुंज नेत्र ज्योतिहीन और सुंदर हृष्ट पुष्ट शरीर हड्डियों का ढाँचा-मात्र रह गया था। वाणी के बादशाह के इस प्रकार मूक हो जाने से बड़ा कष्ट और क्या हो सकता है?

अन्तिम वर्षों में वे पूर्णतः स्थापित हो गए थे। रुद्राक्ष की माला पहनने लगे थे। रामायण तथा विनयपत्रिका और उसके कुछ मंत्रों का भी नियमित पाठ करते थे।

उनकी मृत्यु से कुछ दिन पहले बीमारी की अवस्था में ही उनके जन्म दिवस के उपलक्ष्य में राजधानी के साहित्यकारों ने उनका अभिनन्दन किया था। यह उत्सव अपने ढंग का निराला ही उत्सव था। सारा स्वयं साहित्यकारों ने ही वहन किया था। जिसने जहाँ सुना दौड़ा आया। किसी भी प्रकार की तड़क भड़क नहीं थी। अत्यन्त शान्त एवं निर्मल वातावरण में हिन्दी के साहित्यकारों ने नवीन जी के चरणों में श्रद्धा के सुमन चढ़ाए। दिनकर जी की आँखें उनको समर्पित किया जानेवाला अभिनन्दन पत्र पढ़ते हुए भर भर आती थीं और कितने ही साहित्यिकों की आँखों से तो धारा ही बह रही थी।

दिन पर दिन उनकी दशा चिन्ताजनक होती गई। मृत्यु से तीन चार दिन पहले उनकी चेतना भी लुप्त हो गई थी। दीर्घ काल तक असहनीय वेदना और कष्ट सहन के पश्चात इस महामानव ने २६ अप्रैल सन् १९६० को अपनी अन्तिम साँस ली। उनकी मृत्यु का समाचार पाकर देश के साहित्यिक एवं राजनीतिक जगत् में शोक की एक लहर दौड़ गई।

उसी रात को उनका शव दिल्ली से ले जाया गया और ३० अप्रैल १९६० को दोपहर को कवि की जर्जर देह को आत्मा का डोला सजन भवन पहुँच गया।

श्री बालकृष्ण राव ने उनके बारे में लिखा है "यदि किसी उपन्यासकार ने नवीन जी के चरित्र की कल्पना की होती उन्हें नायक का चित्रण किया होता तो हम शायद यही कहते कि उसने अतिरंजना की है। हम कहते कि न तो कोई इतना सरल गूढ़ भावुक उदार और साहसी होता है जितना उसने अपने—

बालकृष्ण शर्मा नवीन

चरितनायक को बताया है और न एक नरपुंगव के अंतिम दिन इतने विपावत ही होने द। पर यह अतिरंजना किसी उपन्यासकार की नहीं थी—न यह अति रंजना ही थी। और एक उपन्यासकार भाई अमृतराय ने 'नवीन' जी को इस तरह याद किया नवीन जी को आदमी जानता बाद को था पहले प्यार करता था क्योंकि वह खुद आदमी को जानने बाद में थे पहले प्यार करते थे। बडा कठिन है जिंदगी में रीत को निबाह सकना मगर उन्होंने निबाहा और ऐसी खूबसूरती के साथ निबाहा कि आज जब वे चले गए हैं तो ऐसा लगता है कि उनके साथ एक युग चला गया है।

कृतित्व

नवीन जी ने जिन दिनों लिखना शुरू किया वह साहित्य में रही रहाई बातों को नये ढंग से कहने का युग था। द्विवेदी-युगीन घोर आदर्श वाद एवं इतिवृत्तात्मकता में पड़कर काव्य का आत्मतत्त्व सूख चुका था। रूढि रीतियों नीतियों लोकाचारों और पाप पुण्य के अस्वाभाविक एवं विकृत रूपों को महत्त्व देने के कारण जीवन के स्वाभाविक स्रोत अवरुद्ध हो रहे थे। व्यक्ति व्यक्ति के बीच के स्वाभाविक स्नेह-सम्बन्ध को हीन और अनैतिक तक समझा जा रहा था। काव्य से कोमलता और मिठास का करीब-करीब बहिष्कार हो चुका था। आदर्शों को अपने जीवन में उतार बिना उनका उपदेश जितना खोखला हो सकता है कविता उतनी खोखली हो गई थी। जो भी कविता लिखना चाहता था उस कविता में सदा देश, समाज धर्म और नीति की ही बात करनी पडती थी। हर कवि गुरुदेव कबीर राणा प्रताप या दयानन्द का छोटा मोटा संस्करण बनकर बात करता था।

द्विवेदी युग खडा तो रीतिकाल की रूढ शृंगारिकता के विरोध में हुआ था लेकिन कालान्तर में उसने इस विरोध को ही रूढ कर लिया और फिर जैसा स्वाभाविक था अनेक ऐसे लोग सामने आए जिन्होंने जाने अनजाने द्विवेदी-जी और उन जैसे अन्य गण्यमान्य साहित्यिक अधिनायकों को असम्मानित होने लगे। उन्होंने आदर्श का स्थान यथार्थ को और सो भी बिलकुल व्यक्तिगत यथार्थ यानी अपने ही सुख दुःख और आंतरिक संशय और अन्वेषणा को देना शुरू कर दिया। अनेकता का साहस की कमी कहिए कुछ पश्चिम के रोमा-

बालकृष्ण शर्मा नवीन

टिक कविया का प्रभाव कहिए उन्होंने अपने मन की दुविधाओं और निराशाओं का बहुत धुंधला बनाकर पेश किया अर्थात् जब एकदम प्रतिक्रिया में अभिधा को नितान्त गौण रखकर व्यंजित किसी अर्थ की बहुत ही बड़ी एक गुंजाइश छोड़ दी। प्रसाद, पंत, महादेवी यहाँ तक कि 'निराला' और माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएं भी अधिकतर इसी तरह की कविताएं कही जा सकती हैं। बालकृष्ण शर्मा नवीन लगभग उस समय के अकेले कवि हैं जिन्होंने दार्शनिकता और धुंधली बातों न करके जो जैसा देखा समझा उसे वैसा ही कहा। इसलिए हमने बरसों के थके के बाद फिर सरस, सात्त्विक और द्विधाहीन कविता के दर्शन किए। कविता के इतिहास को अविच्छिन्न करके देख तो वह सरल है कि वे कालिदास, जयदेव विद्यापति घनानन्द तथा श्रीधर पाठक की परम्परा में आते हैं। उन्होंने सहज मानवीयता को अपने काव्य का आलम्बन बनाया और हिन्दी साहित्य के शरीर में स्वस्थ रक्त का संचार करके मानव हृदय की चिरन्तन अनुभूतियों का वाङ्मय चित्रण प्रस्तुत किया।

नवीन जी ने सन् १९१६ १७ से ही लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उनका साहित्यिक जीवन 'सन्तू' कहानी से आरम्भ होता है जो सन् १९१८ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। नवीन जी ने चालीस वर्ष से अधिक काल तक साहित्य-रचना की किन्तु प्रकाशन की ओर से वे सदा ही उदासीन रहे। पत्र पत्रिकाओं में भी उनकी रचनाएं जब-तब ही दिखाई देती थीं। राजनीतिक क्षेत्र में व्यस्त बने रहने के कारण वे साहित्य में अपने को केन्द्रित नहीं कर पाए। लिखना 'नवीन' ने भी पंत तथा 'निराला' के साथ ही आरम्भ कर दिया था किन्तु पंत तथा निराला सी ख्याति तो दूर कवि की तरह वे बहुत दिनों तक जाने ही नहीं गए। रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित १९२६ में प्रकाशित 'कविता-कौमुदी' के तृतीय संस्करण में भी नवीन जी को स्थान नहीं मिला है अर्थात् आलोचकों की दृष्टि में उस समय तक उन्हें कवि के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी। यद्यपि अपनी राष्ट्रीय कविताओं के कारण वे जनता के निकट अपरिचित तब भी नहीं थे।

उनका सर्वप्रथम कविता-संग्रह 'कुंकुम' सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में व्रज एवं खड़ीबोली की रचनाओं के साथ व्रजभाषा की रचनाएं भी सम्मिलित थीं। 'कुंकुम' के प्रकाशन के बाद फिर बहुत दिनों तक को— —

आया। दूसरा संग्रह 'रश्मि रेखा' सन् १९५१ में प्रकाशित हुआ और फिर १९५२ में 'क्वासि' तथा 'अपलक' दो गीत संग्रह एक के बाद एक प्रकाशित हुए। इन गीत संग्रहों में मुख्य रूप से प्रेम सम्बन्धी एवं गौण रूप से अध्यात्मपरक दार्शनिक गीत हैं। विनोबाजी की स्तुति में लिखे सात श्रद्धापरक गीतों का एक संग्रह 'विनोबा स्तवन' के नाम से सन् १९५५ में प्रकाशित हुआ। सन् १९५७ में नवीन के काव्य का कीर्ति स्तम्भ 'उर्मिला' महाकाव्य प्रकाशित हुआ। 'प्राणार्पण' खण्डकाव्य का प्रकाशन उनके देहावसान के बाद हुआ। और 'हम विषपायी जनम के' नामक एक लगभग सुव्यवस्थित कविता-संग्रह के प्रकाशन के बाद अब उनका बहुत कम काव्य अप्रकाशित बच गया है।

मैंने 'उर्मिला' के महाकाव्य को उनका कीर्ति-स्तम्भ कहा है अतः उसके सम्बन्ध में दो शब्द कह देना अनुचित न होगा। यदि यह महाकाव्य उचित समय पर प्रकाश में आ जाता तो इस कथन की सत्यता सहज ही सिद्ध हो जाती। काव्य सन् १९३४ में ही पूर्ण हो चुका था लेकिन प्रकाश में आया सन् १९५७ में २३ वर्षों बाद। छः सर्गों में विभाजित इस महाकाव्य में कवि ने विरहिणी उर्मिला की वेदना को वाणी दी है। करुण रस के चित्रण के साथ कवि की प्रौढ़ कल्पना और नई नई सूझें पाठक को मोहित करती चलती हैं। यह महाकाव्य विचारों को इतना नहीं झकझोरता जितना भावनाओं को। कवि ने लिखा है "इस ग्रन्थ को मैंने मन स्तर पर होने वाली क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का दर्पण बनाने का प्रयत्न किया है।"

नवीन जी ने राम की वन यात्रा को आर्य संस्कृति की एक अर्थपूर्ण महान् यात्रा माना है

आर्य संस्कृति जीवन का यह शुभ प्रथम प्रभात हुआ
रवि कुल रवि की प्रथम किरण में अन्धकार अपघात हुआ
यह बर्बर अज्ञान सुनाचनि यह जड़ता जड़ जगत की
हान का है नष्ट आ गई घड़ी प्रात के मंगल की
नव राकेश ज्ञान शुचिता के हम वाहक निष्कामी हैं
यह आदर्श प्राप्त करने को—राम लखन वन गामी हैं।

उर्मिला को कवि ने नारियों के आदर्श के रूप में चित्रित किया है और उसके चरित्र में गम्भीरता त्याग धैर्य साहस सहिष्णुता कर्तव्य निष्ठा तथा

भाव, भावुकता आशा लज्जा आदि सभी गुणो के दर्शन कराए हैं। काव्य मे उर्मिला की महानता के सम्मुख सीता का मस्तक भी आदर मे झुक जाता है

मैं लज्जा मे गड जाती हूँ देख तुम्हारा यह बलिदान'

कवि ने उर्मिला को सरल हृदया भावुक अबला के रूप मे ही नही, बुद्धिमती-वीर नारी के रूप मे भी प्रस्तुत किया है। दशरथ की न्यायहीन अधिनायकवादी नीति का वह तीव्र विरोध करती है

वह दो आज पिता दशरथ से कि यह अधम नही होगा
कह दो, लक्ष्मण के रहते यह, घोर कुकर्म नही होगा,
राज नही कैकेयी का है दशरथ का न स्वराज्य यहा
जन गण मन रजन-कर्ता ही होता है अधिराज यहाँ।

कवि ने सर्वत्र स्त्री के सम्मान की रक्षा की है। लक्ष्मण वन-गमन के पहले उर्मिला से अनुमति लेते हैं। यहा तक कि उन्होंने कैकेयी के चरित्र को भी कालिमा-मण्डित न करके उसे उदात्त बनाया है—

कैकयी मा दूर देश की हैं वे हैं अनुभवशीला,
युद्ध सधि मे प्रकट कर चुकी है वे निज निपुणा-लीला,
उत्तर पश्चिम से प्राची तक विस्तृत है उनका अनुभव,
इसीलिए उनके हिय मे है आया एक भाव अभिनव।

× × ×

पर इस बार, हुआ है उनके गौरव का कुछ ऊँचा लक्ष्य'

इस कारण की कल्पना करके कवि ने कैकयी के प्रति बनी धारणा ही बदल दी है। साकेत मे पश्चात्ताप का आधार देकर उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न की गई है। लेकिन उर्मिला मे कैकयी का चरित्र जिस रूप मे चित्रित किया गया है उससे प्रभावित होकर पाठक के हृदय मे स्वयमेव उसके प्रति आदर एव श्रद्धा का भाव जाग्रत हो जाता है।

नवीन जी इस महाकाव्य के पात्रो को मानवीय धरातल से ऊपर उठाकर नही ले गए हैं। भक्तिभाव की एक भीनी-सी झलक अवश्य जहा-तहा दिखाई पड जाती है।

इस महाकाव्य पर उत्तर प्रदेश सरकार ने नवीन जी को पुरस्कृत किया

था। पुरस्कार तो कदाचित् उस साहित्य अकादमी का भी मिल जाता किन्तु नवीन जी ने वहां से उसे हटा लिया था। प्रसंगवश कहता हूं कि जिस वर्ष नवीन जी की उर्मिला प्रकाशित हुई साहित्य अकादमी पुरस्कार के लिए विचारणीय पुस्तकों में वह शामिल की गई। नवीन जी को तब तक दिल के दो दौरे आ चुके थे और उनकी वाणी चली गई थी। लिखने लिखाने का तो उनके लिए कोई सवाल ही नहीं रहा था। इसलिए हम सब लोगों को लगता था कि इस दृष्टि से भी वही ग्रन्थ पुरस्कार्य है। मैं उन दिनों अक्सर उनके पास ५ विंडसर प्लेस में चला जाता था और उनकी डाक वगैरा खोलकर उन्हें सुना देता था। एक दिन डाक खोलते हुए साहित्य अकादमी के सेक्रेटरी का पत्र देखा, जिसका आशय यह था कि चूंकि आप किसी तरह उक्त पुस्तक को विचारणीय पुस्तकों की सूची में नहीं रहने देना चाहते इसलिए हम बड़ी लाचारी के साथ आपकी इच्छा का पालन करते हुए उसे विचाराधीन नहीं मान रहे हैं। एक और मित्र साथ थे श्री रुद्रनारायण शुक्ल। हम दोनों बड़े हैरान हुए और उनसे सबब समझना चाहा तो उन्होंने इशारा से कहा या ही।

मैंने दद्दा से जाकर कहा। दद्दा हैरान हुए और फिर सोचकर बोले, "शायद सियारामशरण की कोई पुस्तक भी वहां है। वे उसके आड़े नहीं आना चाहें।" स्मरणीय है कि उस वर्ष किसी हिन्दी पुस्तक को साहित्य अकादमी पुरस्कार नहीं मिला।

कविता यदि अपनी ही अनुभूति की अभिव्यक्ति नहीं है तो वह एक सेकंड हैंड चीज होकर रह जाती है। नवीन जी ने लिखा है काव्य तो एक प्रकार के व्यक्तिगत उन्माद की भावनामूलक कल्पना सहगामिनी, सत् चित् आनन्दमयी अभिव्यक्ति है। मैं स्वयम् अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति में यहां तक सदाश्रयी रहा हूं इसमें सन्देह का अवसर नहीं मिलेगा। नवीन जी बड़े भावुक, प्रेमी और सौन्दर्यसिक्त कवि थे। उन्होंने जीवन में जब जैसा अनुभव किया काव्य बद्ध कर दिया। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को ही काव्यरंजित करने का प्रयत्न किया है। वे आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर ही लिखते थे। बहुत दिनों से नहीं लिखा है इसलिए लिखना चाहिए या अमुक अवसर आ रहा है कुछ कह रखना ठीक रहेगा ऐसा उन्होंने शायद ही कभी किया हो। यदि बाहर ने उनके भीतर को नहीं मथा तो उन्होंने अपना आन्तरिक घड़िया उस कभी नहीं सौंपी। और जब

बाहर व भीतर उतरकर हलचल पैदा किए बिना नहीं रह सके। उनकी प्रत्येक कविता के पीछे एक इतिहास है। उनकी कविताएं उनके लिए मनोरंजन का साधन न होकर मजबूरी थी। खरी अनुभूतियों के कवि होने के कारण ही उनकी रचनाओं में स्वाभाविकता और सच्चाई है, मर्म को छूने की अपार शक्ति है। अपने समकालीनों की तरह पंथ की पच्चीकारी एवं कल्पना की गगनविहारी गरिमा के प्रति आग्रह नहीं जान पड़ता। उनके काव्य में कई बार तो ग्रामीण तरलता और सरलता तक है, नागरिक चटक चातुर्य तो लगभग है ही नहीं।

राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लेने तथा अपने गद्य के कारण प्रारम्भिक काल में 'नवीन' जी राष्ट्रीय एवं प्रगतिवादी कवि के रूप में प्रख्यात रहे। उनकी कुछ राष्ट्रीय एवं प्रगतिशील रचनाएं अत्यंत प्रसिद्ध हो गई थीं। उस काल में भारत भारती के पद्यों की तरह ही नवीन जी की ओजपूर्ण कविताएं भी जनता के मन को आन्दोलित करती रहती थीं। कई बार उनकी एक पंक्ति भी जनता को आत्मबलिदान के लिए प्रेरित कर देती थी

"चल चल चढ़ चल, रुक मत रे तू बलिदानों के पुंज,
देख रही न लुभावें तुमको यह जीवन की कुंज,
मधुर मृत्यु का नृत्य देखकर देने लग जा ताल,
अपना शीश पिरोकर कर दे पूरी माँ की माल,
है जीवन अनित्य कट लेने दे तू मोहक बंध
कर दे पूरा आत्मनिवेदन का तू आज प्रबंध।"

राष्ट्र धर्म और राजनीति की एकता की नहीं भावनाओं एवं संस्कारों की एकता का प्रतीक होता है। सांस्कृतिक एकता राष्ट्र का मूल तत्त्व है। संस्कृति के प्रति उत्कटतम भक्तिभाव ही राष्ट्रीयता का आधार है। अलबत्ता यह अनेक रूपों में प्रकट हो सकती है। अपने भूत के प्रति पूर्ण श्रद्धा, भविष्य के प्रति अदम्य आस्था, देश की उन्नति के प्रति व्याकुलता, आततायियों से देश की रक्षा करने की आतुरता, देश के भीतरी-बाहरी शत्रुओं को ललकारने का साहस, देशभक्तों का यशगान तथा उसे हर प्रकार से समृद्ध देखने की लालसा उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है। उनकी कविताएं राष्ट्रीय आंदोलन का काव्यमय इतिहास प्रस्तुत करती हैं। नवीन की राष्ट्रीयता बौद्धिक न होकर आंतरिक और भावात्मक है और तभी उसमें प्राण फूंकने का सामर्थ्य है। देश की परतंत्रता की घड़ियों में

जकड़ा देखकर व उत्तेजित हो हुंकार कर उठते हैं। उनके सहज-कोमल प्राण विप्लव और विद्रोह गा उठते हैं

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिसमें उथल पुथल मच जाय
एक हिलोर इधर से आय, एक हिलोर उधर से आय,
प्राणों के लाले पड़ जायें—त्राहि त्राहि रव नभ में छाय,
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाय
बरसे आग जलद जल जायें भस्मसात भूधर हो जायें
पाप-पुण्य सन्सद् भावों की धूल उड़ उठे दायें बायें
नभ का वक्षस्थल फट जाये तारकवृन्द विकल हो जायें
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाय।

परतन्त्रता की स्थिति में सच्चे देश-भक्त का सर्वप्रथम कर्तव्य यह हो जाता है कि वह सब कुछ दाव पर लगाकर देश को परतन्त्रता के पाश से मुक्त करने का प्रयत्न करे। नवीन को देश के स्वातन्त्र्य सैनिकों पर पूर्ण विश्वास था उन्हें मालूम था कि वे कभी पीछे पर नहीं हटा सकते। इसलिए जब कभी वाध्य न पीछे मुड़कर देखा उन्हें हार्दिक वेदना हुई। गांधीजी ने चौरीचौरा के बाद जब सत्याग्रह बन्द कर दिया तो वे कितने दुःखी और उद्विग्न हुए थे उन्होंने इसमें कितने अपमान और लज्जा का अनुभव किया था यह उनकी तत्कालीन कविताओं से प्रकट होता है। वस्तुतः उन्होंने इसे भारतीय जनता की पराजय माना था। इस पराजय के वातावरण में उनका दम घुटा जा रहा था। उन्होंने पराजय गीत में लिखा

घूम गया जो चक्र उसी की ओर देखता जाता हूँ
इधर उधर सब तरफ पराजय की ही मुद्रा पाता हूँ,
आँखों का ज्वलन्त शोणानल आज दया का नीर हुआ
आज खड्ग की धार कुण्ठिता है खाली तूणीर हुआ।'

दासता के ऐसे क्षणों में उनके हृदय में निराशा के भाव आते हैं, किन्तु यह निराशा बहुत देर तक नहीं टिकती। उनका सैनिक फिर उनके विचारक पर हावी हो जाता है

माना आज छा रहा चहुँ दिशि यह तम राज्य अखण्ड
पर क्या अभी न जीवन पथ में ज्योतिष्कण बिखरे ?

× × ×

'फिर आयेगी ऊषा हँसती, फिर होगा विहान चिर सुन्दर
फिर से नव भैरवी छिड़ेगी फिर होगी पत्तों में फरफर
फिर से अरुण छटा छायेगी फिर होगा द्रुमदल का मरमर
फिर से मन्द बहेगा सन् सन् सनन् सनन् जागरण समीरण।

प्रेम और 'कर्तव्य' में उन्हें प्रायः एक संघर्ष-सा दिखाई देता है, लेकिन 'कर्तव्य' भावना के सम्मुख आकर प्रेम भावना कहीं पृष्ठभूमि में अपनी जगह स्वीकार कर लेती है। देश जब मार्ग पथ पर चल रहा हो उस समय हृदय में रम्य मनुहारें क्या फँस सकती हैं?

मास-वर्ष की गिनती क्या हो यहाँ जहाँ मन्वन्तर जूझें,
युग परिवर्तन करनेवाले जीवन-वर्षों को क्या बूझें।
हम विद्रोही कहो हम क्या अपने मग के कंटक सूझें?

× × ×

हम अशान्ति-काल के प्राणी कहाँ नहीं सुख भाग
घर उजाड़कर जन श्मशान का है हमका राग।

अन्धकारमय भूतकाल को भुला देने में ही कल्याण है। उज्ज्वल भूतकाल की रट लगाने से कोई लाभ नहीं। हमें अपना ध्यान अतीत से हटाकर और वर्तमान में केन्द्रित होकर भविष्य पर ही लगाना चाहिए—

'एक ओर कायरता काँपे गतानुगति विगलित हो जाय
अन्धे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाय
और दूसरी ओर कँपा देने वाला गर्जन उठ जाय
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराय।।

अतः 'नवीन' जी केवल अंग्रेजी राज्य की कुत्सित नीतियों पर ही नहीं, भारत की मूल परम्पराओं और उसकी वर्गगत आर्थिक व्यवस्था पर भी प्रहार करने में नहीं चूकते थे। विपन्नता के मूल में वे सामाजिक वैषम्य, पारस्परिक वैमनस्य एवं अराष्ट्रवादी भावनाओं को मानते हैं। जब तक इन दुर्भावों का नाश नहीं हो जाता तब तक भारत समृद्ध नहीं हो सकता। उन्होंने भारतीय जीवन की करुणा को साकार रूप देने का प्रयत्न किया है। रूढ़ि और रीतियों में फँसी भारतीय जनता का दुःख दारिद्र्य देखकर उनकी आँखें सजल हो जाती थीं। बनियावाद

से मुक्त करके समाज में सुख शांति का साम्राज्य स्थापित करने के लिए वचन रहते थे

> जिनके हाथों में हल-कुदाल जिनके हाथों में घन है
> जिनके हाथों में हंसिया है वे भूखे हैं निधन हैं

उनकी ओर से वे भविष्यवाणी भी करना चाहते हैं

> सुन लो गर तुममें हिम्मत है नया अनूपा का यह गाना
> अब तक के गानेवालों का यह विकट तराना मस्ताना
> जिनको तुम कीड़े समझे थे वे ला मारा ! निकल मानव
> जो रेंगा करते थे अब तक वे ध्यान धर उठे हैं तांडव

शोषण विषमता एवं अत्याचार को नजरन्दाज करके आस्तिक नवीन ईश्वर के अस्तित्व तक में सन्देह करने लगते हैं और मानव को अपने पैरों पर खड़े होने की प्रेरणा देते हैं

> लपक चाटते झूठे पत्ते जिस दिन देखा मैंने नर को
> उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ आग आज इस दुनिया भर को
> यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का
> जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का
> जगपति कहाँ ? अरे सदियों से वह तो हुआ राख की ढेरी
> वरना समता संस्थापन में लग जाता क्या इतनी देरी ?
> छोड़ आसरा अलख शक्ति का रे नर स्वयं जगपति तू है
> तू गर जूठे पत्ते चाटे तो तुझपर लानत है थू है।

मानव ही मानव का शोषण करे मानव ही मानव का काल बने इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है ? नवीन इस अधम को मिटाकर मानवता का मस्तक ऊंचा करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं

> हे मानव ! कब तक मेटोगे यह जिमि सदा भयंकरता
> बन रहा आज मानव देखो मानव का ही भक्षणकर्त्ता
> है दुनिया बहुत पुरानी यह रच डालो दुनिया एक नई
> जिसमें सर ऊंचा कर विचरें इस दुनिया में बेताज कई।

इसे नवीन का प्रगतिवाद भी कह सकते हैं किन्तु यह वास्तव में उनकी राष्ट्रीयता का ही एक रूप है उनके प्रगतिवाद में मार्क्सवादी भौतिक

दर्शन की गन्ध के बजाय भारतीय अध्यात्मवाद की महक ही अधिक है। उनकी प्रगति गाँधी एवं विनोबा की मानवीय व्यापकता को समेटे हुए है। सच कहूँ तो वे अपने को किसी वाद विशेष में सीमित करके नहीं चले, उनकी दृष्टि वादों से परे समस्त मानव हित पर ही केन्द्रित रही। वे सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण की कामना करते हैं

आओ पर द तम क्षार क्षार! मिट जाये जग का अन्धकार!'

वे विश्व का अन्धकार मिटाकर शाश्वत मानव धर्म की स्थापना का स्वप्न देखते हैं। समाज के संकुचित सीमा बन्धन समाप्त हों मानव मानव में समता का भाव उदित हो। वे ईश्वर से प्रार्थना भी करते हैं तो यही

कंप अहङ्कार भावना मिटे संकुचित सीमा बन्धन,

उसमें गाँधी और विनोबा उनके आदर्श पुरुष हैं। और आशा उन्हें उन्हीं के वचन और कर्मों के अनुसरण में दिखती है

जग चुकी है वर्तिका स्थिरकाय तापस की
कँप रही है गहन अँधियारा अमावस की,

मानो विनोबा के स्वर में स्वर मिलाकर नवीन जी भी स्वर्ग की अवतारणा धरती पर ही करना चाहते हैं

हम खींचकर स्वर्ग
कहीं यदि उसका ठौर ठिकाना है
इस धरती पर लाना है
बनना है हमको निज स्वामी
ऊर्ध्व-वृत्ति मन चित्र अनुगामी
वसुधा मुक्ता सिंचिता करके हमें अगर फल पाना है।
जो कि देव दुर्लभ है उसको इस धरती पर लाना है

नवीन जी की राष्ट्रीयता एवं प्रगतिशीलता उत्तरोत्तर परिष्कृत होती हुई अन्त में विश्व मानवता में परिणत हो जाती है। वो समय-समय पर वे विभिन्न वादों से प्रभावित भी रहे हैं लेकिन वे किसी भी वाद विशेष में बँधकर नहीं रहे। उन्होंने लिखा है मानव मानव है यह केवल सामन्तवाद, पूँजीवाद वर्ग वाद भौतिकवाद आदि का पुरजा मात्र नहीं है। उस समय के अत्यन्त प्रति

बालकृष्ण शर्मा नवीन

प्ठित निमम नतिकता के कठघरे म बन्द होकर रहना 'नवीन' जस सरस भावुक वेलाग और वहादुर आदमी के बस के बाहर की बात थी। उनकी स्वच्छन्द कि तु कल्याणकारी मति के छूट्टे छपाटे म जहा परिगण वहा विधि निषध और परम्पराओं के दुग ढहते नजर आते ह

कूजे मे कूजे म बुझनवाली मेरी प्यास नही
बार बार ला ला कहन का समय नही अभ्यास नही
अर ! यहा द अविरल धारा बूद बूद का कौन सहारा
मन भर जाय, जिया उतराए डूब जग सारा का सारा

तन्मयता निश्छलता निष्ठा, वासना उन्माद एव मस्ती की अपूर्व छटा के ऐसे दान आज भी दुलभ हैं

दवि भुजाओं म आलिंगन का भर रहा उछाह
रोम रोम म समा गई है युग मिलन की चाह
× × ×
नग्न चरण नि साधन जीवन जन धन हीन प्रवासी मैं
ज्योति अखण्ड प्रचण्ड जगाये विचरूँगा स यासी मैं।
ज्ञान शिखा प्रज्वलित अनगिनत दिखलायेगी मुझे दिशा
वह प्रकाश आलोक हरेगा बन जय हिय की शुद्ध निशा।

उनके प्रेम म प्रबल आवेग है। किन्तु वह हतबुद्धि नही है उसने माना किसी पारदर्शी बुद्धि या ज्ञान म अनुभव कर लिया है कि जो उस प्रिय है वह कोई छोटी मोटी चीज नही है वह तो भूमा है और सुख अल्प म नही है इसी भूमा म है

कारी निसि, कारी अवनि कारी दिसि चुपचाप
कारी नयन कनीनिका कारे केस कलाप
कारे द्रुम कारी लता कारो सब ससार
कारो-कारो है रहा हिय विछोह ससार।

विरह का शाश्वत तत्त्व नवीन जी को जितना छूता है उतना मिलन नही। नवीन जी ने लिखा है मेरे जीवन म एक अकारण असन्तोष एक मधुर चाह एक अमिट प्यास एक विषादमयी स्फूर्ति एक अतृप्ति बनी हो रहती है। सुख और आनन्द के बीच एक हूक सी उठ आती है। मानो सायुज्य-सयोग के क्षणो

म भी विप्रयोग की बाँसुरी की एक हूक-सी सुनाई दी जाती है।' इस तरह नवीन के काव्य का मूल स्वर प्रेम है और उसमें भी प्रेम के विरह पक्ष ने ही उन्हें अधिक अभिभूत किया है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में भी विरह की छाया थी। बाद में तो वे वेदना के गीतों के ही गायक हो गए

मैं तो हूँ मरुथल का मृग, प्रिय हूँ न जाने कितना प्यासा
मैंने अपने जीवन-वन में जाने कब जाना चौमासा?

नवीन को मांसल भावना का कवि कहा जाता है। उनके गीतों में मांसल भावुकता है लेकिन यह मांसलता उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती जाती है। पार्थिवता को उन्होंने साधन के रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने अपने एक काव्य-संग्रह की भूमिका में लिखा भी है, 'ये मिट्टी की गुड़ियाँ तो सोपान हैं'।

नवीन जी प्रेम को जीवन का यहाँ तक कि मुक्ति का माध्यम मानकर चलते हैं

'मानव की मुक्ति है इस राग में' अनुराग में ही
छूट सब क्या राग, जब ये आ पड़े हैं आग में ही,
ध्यान बस इतना रहे सुनके रहे सब तार-तार
राग में ही मनुज के सब सुप्त, विजड़ित भाव जाग।

यह ठीक है नवीन जी मूल रूप से प्रेम के कवि हैं किन्तु उनमें इस पार के लिए तीव्र ललक होते हुए भी उस पार के लिए जिज्ञासा कम नहीं है। उनकी रचनाओं में हमें कहीं हल्के कहीं गहरे आध्यात्मिक संकेत प्राप्त होते ही रहते हैं। उनका अध्यात्मवाद कभी वैष्णव भक्ति का आँचल पकड़ता है कभी रहस्यवाद के झूले में झूलता है। वे ब्रह्म को एक ओर कन्हाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर निराकार रूप में। जगत के सम्बन्ध में उनकी जिज्ञासा, विस्मय एवं कुतूहल की भावना ने कभी झपकी नहीं ली। उनमें हमें कभी सूर मीरा, कबीर जैसी तन्मयता तो कभी नाथ सिद्धों और सन्त-सूफियों जैसी छटपटाहट के दर्शन होते हैं।

आत्मा द्वारा परम सत्ता की खोज उसका साक्षात्कार और उसमें विलय की भावना प्राचीन काल से ही भारतीय काव्य-साहित्य का विषय रही है। 'नवीन' जी ने लिखा है 'इस मानव को मुक्ति का सन्देश देना और अपने को भी बन्धन-पाश से छुड़ाने का सतत प्रयत्न करते जाना यही भारतीय साहित्य का

चरम, अंतिम, परम उद्देश्य है। संसार का कण कण उस अनन्त सत्ता की खोज में पागल हुआ घूम रहा है मगर इस प्रेम का रहस्य सब नहीं जानते। जीव और प्रभु की समरसता एवं एकीकरण रहस्य की अंतिम परिणति है। जीव मार्ग के व्यवधानों को समाप्त करता हुआ उत्तरोत्तर ब्रह्म की ओर अग्रसर होता है। कभी-कभी नवीन को लगता था कि उनके प्रिय तक उनकी विरही आत्मा की आवाज पहुंच गई है। प्रिय के साक्षात्कार का समय समीप है। प्रतिध्वनि-मात्र से उनके रोम रोम पुलकित हो जाता था। एक जगह उन्होंने आत्मा से चिर मिलन के लिए तयार होने को इस तरह व्यक्त किया है

घन उतार अग उत्तर आनी तू क्षण भर में होगी पियमय
अब कैसा दुराव साजन से, पूर्ण हुआ तेरा अय विस्मय।
नत लोचन! हृदय की नीवी खोल नयन में सहज भाव भर
दिखला दे अपने प्रियतम को जनम जनम का अपना निश्चय
यह पल्ला यह पट यह अंचल भारभूत हो जायेंगे सब
अरी! तनिक ध्यान तो दे तू उनकी मादक मुरली की लय।

और चिर मिलन की आतुरता की बेचनी को व्यक्त करनेवाली ये पंक्तियां

डोला लिये चलो तुम झटपट छोड़ो अटपट चाल रे
सजन भवन पहुंचा दो हमको मन का हाल बेहाल रे
बरसों से तू मैं सब सहेलियां मैंके पहुंचा आय रे
बाबुल घर से आज चली हम पिय घर नात निहाय रे
उनके बिन बरसाती रातें कैसे कटें अचूक रे
पिय की बांह उसीसे न हो तो मिटे न मन की हूक रे
डोली वालो थके चलो तुम आया संध्या काल रे
सजन भवन पहुंचा दो हम को छोड़ो अटपट चाल रे

यद्यपि गांधीजी और विनोबा से सम्बन्धित उनकी प्रायः सभी रचनाएं विचार और चिन्तन प्रधान कविताएं हैं और उनमें नवीन जी का गीति तत्त्व मूक हो गया है किन्तु गीति तत्त्व उनका प्रधान तत्त्व है। उसे उन्होंने दोहा सोरठा, कवित्त आदि प्राचीन छन्दों के साथ संग्रह उर्दू की बहरों तक में आजमाया है। कहीं-कहीं उन्होंने राग रागिनियों का भी आश्रय लिया है। छन्द और भाषा पर उनका खास आग्रह नहीं है। वे माध्यम मात्र हैं। आवश्यकतानुसार वे ब्रज अथवा खड़ीबोली को ग्रहण

करते हैं। शब्दावली के विचार से भी उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है किन्तु उर्दू, ब्रज एवं बैसवाड़ी के अनेक प्रचलित शब्द सहज भाव से उनकी कविताओं में आते हैं

> हवा जो पधारी सनकती, बहकती
> परिंदों की टोली जो आई चहकती
> कलिया की लज्जा जो छूटी महकती
> तो गाया हम सुध में आई स्टकती,
> यह जीवन है ? यह तो मरण संतरण है
> भजन न हमारा क्रिया निस्मरण है "

साधारण पाठक के लिए यद्यपि उनकी भाषा कुछ दुरूह समझी जा सकती है लेकिन अर्थ-सौन्दर्य, नाद सौन्दर्य एवं चित्र सौन्दर्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से उनकी भाषा की शक्ति मान लिया जाना चाहिए है। नवीन का काव्य जीवन, यौवन शक्ति ओज माधुर्य प्रेम एवं करुणा के सप्त स्वरों से झंकृत है। एक ओर उसमें हृदय वशीकरण की जीवनी शक्ति है तो दूसरी ओर मस्तिष्क को प्रबुद्ध करने की अनुपम सामर्थ्य भी। नवीन सर्वत्र हृदय एवं मस्तिष्क दोनों का संतुलन बनाए रखते हैं। कहीं कहीं उनकी भावात्मकता अत्यंत तीव्र हो उठती है परन्तु वह बौद्धिक सीमा का अतिक्रमण कहीं भी नहीं करती। नवीन के काव्य में अलौकिकता है किन्तु उसका आधार लौकिक ससीम ही है अलौकिक निस्सीम नहीं। लौकिक ससीम का ही विस्तार करके उन्होंने उसे अलौकिक निस्सीम तक पहुंचाया है।

बच्चनजी के शब्दों में 'नवीन' जीवन के ठोस अनुभूतियों विरोध भावनाओं क्रांतिमय विचारों सहज कल्पनाओं एवं सरल अभिव्यक्तियों के कवि हैं। उचित है उनका लिखावट अस्वच्छ है अस्पष्ट है, दुरूह है। पर वह हर जगह सारगर्भित है सार्थक है।

मैं ठीक ही कह सकता हूँ कि 'नवीन जी ने अपनी ४५ वर्षों की काव्य साधना में कितना लिखा आकार और प्रकार दोनों दृष्टियों से वह विविध और बहुत है। नवीन जी के छंद कविता संग्रहों, प्रबन्ध काव्यों और पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख कहानी आदि गद्य साहित्य पर जिस दिन सम्यक् विचार होगा उस दिन उनके अध्ययन को नई गरिमा मिलेगी। नवीन जी अपने जीवन-काल में एक राजनीतिक व्यक्ति ही अधिक समझे जाते रहे। ज्यादातर तो उनकी

कविताओं का पठन-मनन थोड़े से मित्रों तक ही सीमित रहा। साधारण पाठक और असाधारण आलोचक तक उनके काव्य-संग्रह बहुत देर से पहुँचे। कभी राजनैतिक मंच से तो कभी किसी कवि सम्मेलन में उन्होंने कविता सुनाकर अनंत जन समुदाय को विभोर कर दिया तो बहुत समझिए। समुदाय के सामने जब वे डूबकर पढ़ते थे तो समुदाय समुदाय नहीं रहता था एक व्यक्ति की तरह तल्लीन होकर वह सागर सिमटकर जैसे भावबिन्दु में बंध जाता था। 'नवीन' जी के काव्य की यह खूबी कि वह जितना पठ्य है उससे अधिक श्रव्य है उसे इसलिए महान् काव्य की श्रेणी में बिठा देता है। श्रोता समुदाय में विद्वान भी होते हैं और साधारण जन भी। यदि किसी काव्य या नाटक को सुनकर सब तल्लीन हो जाएं तो उसका यह अर्थ होता है कि वह रचना अथाह है और सबको अपना अपना प्राप्य दे देती है। समुदाय में जो सुनाया जाता है वह प्रायः चुनकर सुनाया जाता है जबकि संग्रहों में चुनाव बारीकी से न करके प्रायः सारे लिखे हुए को पेश कर देने का मोह होता है और इसलिए कई बार संग्रहों में अच्छी कविताएं खो जाती हैं। नवीन जी की अनेक अच्छी कविताओं का यही हुआ है। उनका नवीनतम संग्रह हम विषपायी जनम के इसका उदाहरण है। अगर यह एक संग्रह बनकर न आता अलग अलग स्वभाव की कविताएं अलग अलग संग्रहों के रूप में आतीं अर्थात् यदि वे *सिरजन की ललकारें नवीन दोहावली पावसपीड़ा प्रलयंकर* स्मरण दीप और मृत्युधाम में बंटकर छः नये संग्रहों की तरह और थोड़े थोड़े काल के अन्तर से आतीं तो हिन्दी के पाठक और आलोचक दोनों को आज जो संकोच सहना पड़ता है न सहना पड़ता। वह निस्संकोच और असंदिग्ध भाव में नवीन जी को अपने मन और लेखन में वही स्थान दे सकता जो उन्हें दिया जाना चाहिए। यह छपना छपाना एक शास्त्र है। लिखने से बड़ा। जो अच्छा लिखकर अच्छा छपाना नहीं जानता वह अपने और अपने मित्रों के संकोच का कारण बनता है। *नवीन जी ऐसे ही एक कवि थे जिन्होंने* अच्छा लिखा और बहुत असिल-सिले अपने को छपवाया। अब यह हमारा काम है कि हम उनके प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही तरह के साहित्य को पुराने संग्रहों और पत्रिकाओं में से उबारें उसे नई तरतीब और नये आवरण देकर उनके योग्य प्रतिष्ठा दें। पतंजलि के शब्दों में "नवीन वाणी के उन वरद पुत्रों में से थे जिनकी रस सिद्ध तप पूत आत्मा को मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती।

—भवानीप्रसाद मिश्र



संकलन

क्रम

सूखे आँसू

क्या कलेजे की तड़प धीमी पड़ी
आज दिल सुनसान-सा क्यों हो गया
आँख के अन्यतम भावों की लड़ी
तोड़ दी किसने कहाँ धन खो गया ?

इस विषमता की सरसता सूखकर
किस सरोवर में तिरोहित हो गई
इस विपिन की वह कुहुकनी कूककर
किस निनादित वेणु-वन में सो गई ?

सिसकन में ही मज़ा मिलता रहा
कसक की उस वेदनामय आह में
इस विपन्ना का कमल खिलता रहा
दर्द को दिल में जगाया चाह ने ।

हाय पर वह दर्द मेरा क्या हुआ
किस निठुर ने हाय पट्टी बाँध दी
लोन लोचन बिंदु तुम अब हो कहाँ
सूखता है यह विटप लो देख तो ।

—'कुन्दन' से

१९२१

मन-मीन

मछली मछली, कितना पानी ?—ज़रा बता दो आज
देखूँ कितने गहरे में है मेरा जीर्ण जहाज ।
मन की मछली डुबकी लगाकर कह दो कितना जल है
कितने नीचे कितने गहरे यहाँ थाह का थल है ?
पंकिल थल सुनील जल हिल मिल हुए कहाँ हैं एक ?
मछली मछली, मुझे बता दो कहाँ थाह की रेख ?

कई बार तल से टकराया फिर भी पता न पाया
ज्यों ही पैठा त्यों ही उफना कर फिर से उतराया
जलनिधि में उलीचन की टपकाए बिंदु अनेक
किंतु टिटिहरी का धीरज छूटा अथाह जल देख
अब तुमसे कहता हूँ मुझको ज़रा बता दो मीन
कितने नीचे तल की भूमि सिमिटता है सकोण

तरल तरंगें बढ़ आती हैं होता हूँ हैरान
ये उठती लहरें सिंचित करतीं तट का म्लान ।
यहाँ, वहाँ, सर्वत्र आप ही आप जलधि का क्षार
कीर्णित हो जाता है मम जीवन-तट पर प्रति बार ।
कैसे यह जल का प्लावन विप्लव होवेगा शांत ?
मन की मछली कहो हृदय कैसे होगा विश्रांत ?

तुम्हें डूबने ही में सुख मिलता है क्या जल बीच ?
आने में संकोच किया करती हो क्या थल बीच ?
मेरा जल-थल एक हो रहा है न करो कुछ सोच,
प्राण नाश का अर्थ हो गया है जीवन का लोच !
इधर उधर मुड़ जाने ही से जीवन गाँठ बँधी है !
मछली, मछली इसीलिए अभिलाषा आज सधी है !

यदि थल में आ जाओगी तो प्राण नहीं तड़पेंगे
द्रवित तटों के पंकिल रज-कण में दुखिया अटकेंगे
यदि तड़पे ये वहीं तो भी चरणों में जाएँगे,
वहाँ रहेंगे मँडराते ये वहीं शान्ति पाएँगे।
जी के कठिन प्रश्न का उत्तर यों ही मिल जाएगा,
मन की मछली निडर प्रेम का सौदा निपटाएगा।

जिसके एक-एक पद संचालन से कंपित प्राण
जिसके नेह-पगे अवलोकन से ढुरता है त्राण,
प्राण प्राण के मिस होता है जहाँ नेह का दान
नेह दान के मिस जो करती है मुझको म्रियमाण।
उसका कुछ परिचय दे दो, वह निष्ठुर प्रतिमा कौन।
मन की मछली क्या साधे बैठी हो तुम यह मौन ?
गहराई के अंतस्तल में कौन छिपी बैठी है ?
मछली मछली ज़रा बता दो कौन रूठ बैठी है ?

अगस्त, १९३५ —'माधुरी' से

मृदग चग

माकुलता "याकुलता हो पूछती, माह ! मुझ
मब यह जान दो मासुम्रा क मग-मग ?
"नजवती तव कर पल्लव परम हीन
माय ना गुजार-स्वर हा गया "निता"त भङ्ग

नटरानी, बन "म मतिवा क भाजन म
रति गति भर प्राण गुण को चला दा सग
मौन भग होवे उठे तरल तरङ्ग घोर
गूज सुमृदङ्ग वहे नोचना म मथ "ग

कौन कहसकता है मरी यह जीवन की
स्वतवणा गगन विहारिणी लचीली चग
सरी नवडोरी की सुपा"न म बधगी ? और
कोमन करा म आन सिहरगी मग मग ?

अगुलि स आखा से हृ"य-स्प"न से मत्त
रङ्गित करो री उडन दो कागजी पतग
एक लपभप म एक भटके म (न देखो)
उमड पडा है इस जीवन क्या का "यग ।

२२२१

—'कुकुम' मे

मनोरथ

अलमस्त हुई मन झूम उठा चिड़िया चहकी डरियाँ डरियाँ
चुन ला सुकुमार कली बिखरी मृदु गूँथ उठी लरियाँ लरियाँ
किसकी प्रतिमा हिय में रचिके नव प्रीति करूँ घरियाँ घरियाँ
किस ग्रीव में डारूँ ये डालूँ सखी, अँसुआन ढरूँ झरियाँ झरियाँ

सुकुमार पधारे खिलो द्रुम तो इस दीन गरीबिन के अँगना
हँस दो, बस दो रस की रसरी पलकों दो अजी करके कँगना
तुम भूल गये कल से हलकी चुनरी गहरे रँग में रँगना
कर में कर थाम लिये चल दो रँग में रँग के अपने सँग—ना ?

निज ग्रीव में माल सी डाल तनिक कृतकृत्य करो शिथिला बहियाँ
हिय में चमके मृदु लोचन वे कुछ दूर हटे दुख की बहियाँ
इस साँस की फाँस निकारि सखे बरसा दो सरस रस की फुहियाँ
हरखे हिय गाय उठे जियरा, मिल जायँ मनोरथ की जुहियाँ।

१५ दिसम्बर, १९३० —'हम विषपायी जनम के' से

मदिर हिलोर

अरी मानस की मदिर हिलोर !
मत बह मत उठ मत लहरा तू
तेरा ओर न छोर !

गुपचुप मधुप पान कर आया
रस बूँदें दो चार
अब न उमड़ तू मम नीरवता में
मत भर रव रार !
अरी मानस की मदिर हिलोर

घहरान राहरान की है
नहीं भाता आज
यों ही आहों के मिस
छलका दे वेदना अथोर
अरी मानस की मदिर हिलोर !!

प्यार कहानी हिय अकुलानी
छानी रखियो खूब
बहुत बार धोखा दे देती है
लोचन की कोर !
अरी मानस की मदिर हिलोर !!

१३ अक्टूबर, १६[illegible]

—'रश्मि रेखा' से

साकी

साकी मन घन गन घिर आये उमड़ी श्याम मेघ माला
अब कैसा विलम्ब तू भी भर भर ला गहरी गुल्लाला ।

तन के रोम रोम पुलकित हों लोचन दोनों अरुण चकित हों
नस नस नव झंकार कर उठे हृदय विकम्पित हो हुलसित हो
कब से तड़प रहे हैं खाली पड़ा हमारा यह प्याला !
अब कैसा विलम्ब साकी भर भर ला तू अपनी हाला !

और और मत पूछ दिये जा मुँहमाँगे वरदान लिये जा
तू बस इतना ही कह साकी 'और पिये जा और पिये जा !'
हम अलमस्त देखने आये हैं तेरी यह मधुशाला
अब कैसा विलम्ब साकी भर भर ला तन्मयता हाला !

बड़े विकट हम पीने वाले तेरे गृह आये मतवाले
इसमें क्या संकोच लाज क्या, भर भर ला प्याले पर प्याले
हमसे बढ़कर प्यासा से पड़ गया आज तेरा पाला
अब कैसा विलम्ब साकी भर भर ला तू अपनी हाला !

हो जाने दे गर्क नशे में, मत आने दे फर्क नशे में
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के फट जाने दे वर्क नशे में
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला
साकी अब कैसा विलम्ब, भर भर ला तन्मयता हाला !

तू फला दे मादक परिमल जग म उठे मदिर रग छन-छल
अतल वितल चल अचल जगत म मदिरा झलक उठे झल झल झल
कल कल छल छल करती हिय तल मे उमडे मदिरा बाला।
अब कैसा विलम्ब साकी भर भर ला तू अपनी हाला!

कूज दा कूज म बुभन वाली मरी प्यास नहीं
बार बार 'ला ला' कहने का समय नहीं अभ्यास नहीं
अरे बहा दे अविरल धारा बूद-बूद का कौन सहारा
मन भर जाय, जिया उतराव डूब जग सारा का सारा
ऐसी गहरी ऐसी लहराती ढलवा द गुल्लाला
साकी अब कसा विलम्ब ढरका द तन्मयता हाला!

१९३१ —'रश्मि रेखा' म

नारी

सृष्टि मथन की पुरानी तुम पहेली गूढ़
गहन सम्भ्रम-ग्रंथि तुम, तुम ज्ञानगति दिङ्मूढ़
तुम भ्रमित अनि थकित विचलित चकित भाव-समूह
मुनस्क फिर-फिर उलझनी तुम प्रश्न-वृत्ति दुरूह
तुम पिपासाकुल जगत की प्यास प्राणा नारि
एक घूंट अपूर्ण तुम मृगतृष्णिका सुकुमारि।

तुम सृजन-मथन-जनित विगलित विमल नवनीत
चलित प्रजनन घन की तुम स्निग्ध बूंद अतीत
तुम जगत नीरस मरुस्थल के बरसन मेह
तुम तड़ित विद्युच्छटा, तुम सरसता के गेह
तुम विराग विकार में अनुरागिनी मनुहार
रार तुम अविचार तुम तुम प्यार अत्याचार।

तुम समस्या अटपटी तुम चिर रहस्य महान
तुम दरस की चटपटी उत्कंठिता अनजान
निपट आँखमिचौनिया की तुम अजब अम्लान
विगत युग-युग की चिरन्तन तुम चमक मुसकान
हृदय-मथनकारिणी तुम मादमय उन्माद
कल्पना की कोकिला तुम रुचिर भाव प्रमाद।

खूब बन आयी सलोनी तुम ठसक ठकुरास
मत्त गज-गति में छिपा आलस्य का आभास
विद्रुम डाला है जगत के ग्रीव में गुण बंध
नयन-कलिका में भरी है अमित मादक गंध
आ जगत की स्वामिनी मायाविनी, तुम धन्य
तुम प्रकृति के मुकुट का प्रतिबिम्ब रूप अनन्य।

१६३१ —'हम विषपायी जनम के' से

रुन-झुन-झुन

रुनझुन रुनझुन झुनझुनुन झुन झुनझुनुन झुन झुनझुनुन !
मेरे लालन की पैजनिया झुनक रही मेरी आँगनियाँ
औचक आकर धीरे धीरे सुन ले तू मेरी साजनियाँ
ना जानूँ कब पाया है यह धन मेरी पड़ोसिन सुन !

पैंजनिया की खन-खन से मेरे मन में उठती झंकृतियाँ
ठगी ठगी-सी रह जाती हैं नन्हे-नन्हे चरण अलङ्कृतियाँ
लल्ला उठ उठ कर गिरता है धूल भरा हँसता फिरता है
लालन की इस अस्थिरता में थिरक रहा जग की स्थिरता है
आज विश्व की शाश्वतता मम आँगन आई बन निरगुन !

छिटका मेरा लाल कि मेरे मन में हुआ उजेला-सा
रोया रंच कि विश्व हो उठा मेरे लिए अकेला-सा
आँसू-कण बरसाते आता तार-तार टपकाते आता
मेरे घर आँगन में आता रुदन-हास का मेरा खजाना
मेरे स्मरण गगन में गूँज रही है इसकी रुन झुन-झुन ।

आज विश्व नाद अपनी गोदी में खिला रही हूँ मैं
सुविगत, वर्तमान भावी को मधुरस पिला रही हूँ मैं
शत शत सस्नेह की धारा मेरे स्तन में बही अपारा
बनकर पयस्विनी करती हूँ मैं भविष्य निर्माण दुबारा
मेरे शिशु में अगली मानवता की रुचिर पुरातन धुन !

१९३२

—'रश्मि रेखा' से

कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?

कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?
चलित चरणों की जगह अब कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?

इधर देखा उधर झाँका
मिल गए कुछ चपल-लोचन
मैं समझ बैठा कि मुझको
मिल गए संकट विमोचन
किन्तु करता हूँ विगत का
आज जब सिंहावलोकन
देखता हूँ तब अनस्थिर भावना के आचरण ये !

प्राण के उच्छवास में मैं
खींच लाया शूल कितने
और हर निःश्वास में
उड़ उड़ गए हैं फूल कितने
दान के स्मृति रूप कंटक
मिल गए हैं आज इतने
सुमन पूजा के हुए हैं शूल ही नव संस्करण ये !

नेत्र विस्फारित किये
जल थल असीमाकाश में नित
फिर रहा हूँ खोजता कुछ
अनवरत व्याकुल प्रवंचित

भाल-रेखा पर हुई है
चिर विफलता छाप अंकित
विकल अर्पण-मूरति को कब करेंगे प्रिय वरण वे ?

दीप-लघु मैं तव अनम्र-कर में
समय-नद में प्रवाहित
नित्य प्रति प्रतिकूलता के
प्रबल झोंकों में प्रताड़ित
टिमटिमाता बह रहा हूँ
मैं जनम का ही निराश्रित
दीप-सम्पुट कब बँधेंगी कर अँगुलियाँ मन हरण वे ?

कौन जाने यह विकम्पित दीप
तुमने कब बहाया
क्या पता तुमने इसे
फिर कब बुझाया, कब जलाया
है पता इतना कि इसने
आज तक आश्रय न पाया
हैं बहाये जा रहे इसको प्रवाही उपकरण ये !

काँप रही है ज्योति अब तो
तुम इसे कर दो अनिङ्गित
अब निवात स्थान में अब
लौ लगे इसकी अनाङ्गित
सजल ज्योतिर्मय करो
निज पुंज में इसको सुसंचित
थाम दो अब ना तनिक इसके अवश मे संतरण ये !

मई, १९३६ —'क्वासि' से

साजन लेंगे जोग, री

आज सुना है सखी हमारे साजन लेंगे जोग, री
हम दोनों में दे जाएगे वे विकराल वियोग री।

इस चौमासे में सावन में घन बरसें दिन रात री
ऐसी ऋतु में भी क्या होती कहीं जोग की बात री
घन धारा में टिक पाएगी कैसे अंग भभूत री
फैल जाएगी इक छिन भर में यह विराग का छूत, री
अभी सुना है सजन गरुए वस्त्र रगेंगे आज री
और छोड़ देंगे वे अपनी रानी अपना राज री
हिय मन्थन लीला रति में भी यदि न विराग विचार री
तो फिर बाह्य आवरण अर में है क्या कुछ भी सार री?
प्रेम नित्य सन्यास नहीं तो अन्य योग है राग री
सखी कहो तो रहे सजन क्या पथ अन्यटा जाग री

हमने उनके अथ रग लिया निज मन गैरिक रग री
और उन्होंने अथ सुगन्धित किये सभी अग अंग री
सजन लगन में हृदय हो चुका मूर्तिमत सन्यास री
अब जोगी बन छोड़ेंगे क्या वे यह हिय आवास री
सजनि रच मैं दो उनसे है यह बतुका विचार री
उनके रमते जोगीपन में होगा जीवन भार री
चौमासे में अनिकेतन भी बरते कुटी प्रवेश री
उनको क्या सूझी कि फिरेंगे वे सब देश विदेश री
उनका अभिनव योग बनेगा इस जीवन का सोग री
सखी नैन कैसे देखेंगे उनका वह सब जोग री

२८ जुलाई, १६३६

बयालीसवें वर्ष के अन्त पर

पूछा संध्या ने आज कवे, हम शोक मनायें या कि हर्ष
तुम आज कर रहे हो पूरे चालीस और दो अधिक वर्ष
यह बयालीसवाँ वर्ष आज अस्तंगत रवि के साथ चला
जानो, किन भावों को लेकर आयेगा कल ऊषा चपला
जीवन के इतने वर्ष बने धुँधली स्मृतियों के पुंज रूप
हे कवि, क्या देखा है तुमने इनमें कुछ अपनापन अनूप?

मैंने देखा है मानव क्षितिज, मैंने देखा है अपने को
इतने बरस भर पूरे करते देखा जीवन के सपने को
हो चला कालिमा से मण्डित सन्ध्या नभ आ था तान तान
पर दिखे मुझे पर दिखा पूर्ण निर्निमेष हँसता उन्नत वितान
मैंने सन्ध्या से कहा, सखि, मेरे जीवन की धूप-छाँह—
है हर्ष शोक में पर आज है बहुत दूर मेरी निगाह।

ओ बयालीसवें वत्सर की मेरी उत्सुक झुटपुटी साँझ
है स्पन्द आज इस जीवन की मादक गंभीर मृदंग माँझ
गाये हैं मैंने कई गीत रोये राग हैं नये-नये
हर सुबह और हर शाम उठी है जो मन टीसें नई-नई
क्या देखूँ मैं पीछे मुड़कर जीवन का ऊसर विगत क्षेत्र
हे साँझ आज आगे को हैं मेरे ये उन्मुख युगल नेत्र।

मेरा अतीत है महाकाव्य दुर्बल मानव क्रीड़ाओं का
मेरा अतीत है एक पुंज मन की गहरी पीड़ाओं का
हैं रहे स्वप्न मेरे साथी, संगिनियाँ रहीं निराशाएँ
जीवन-नद में उन बुद्बुद-सी बन बिगड़ीं मम अभिलाषाएँ
पर सख्य, आज निरिन्द्रिय भी निःस्नेह भाव की चाह जगी
कुछ-कुछ रहस्य उद्घाटन की हिय में यह नूतन लगन लगी!

बालकृष्ण शर्मा नवीन

यह जो कहलाता है असीम क्या है सचमुच सीमा न हीन
जिसको विमुक्त कहते हैं वह क्या है वास्तव म निज अधीन
यह जो अनन्त अम्बर है वह क्या है इतिशून्य अशेष लीन
अक्षर क्या सचमुच ही न कभी होता है किंचिन्मात्र क्षीण
जग रहा आज य युग युग की प्रश्नावलियां अलसायी सी
तड़पन जसी यह जिज्ञासा उठ रही आज बल खायी सी !

मेरे जीवन की सध्या की झुटपुट अंधियारी उमड रही
मेरे नयनों म भी तो यह अब ज्योतिक्षीणता घुमड रही
तन म थकान अनुभूत हुई मन म शैथिल्याभास हुआ
ऐसी घड़ियों म इस शाश्वत जिज्ञासा का सुविकास हुआ
परदे के पीछे क्या है यह उस समय देखने की सूझी
जब खतम हो चली है मेरी हस्ती की शारीरिक पूजी।

चेतना लता म लय भव के क्या सुमन फूलते रहते हैं
क्या जन्म मरण क झूले म ये प्राण झूलते रहते है
य पूण पुरातन प्रश्न चिह्न ये चिर जाग्रत य चिर नवीन
मेरे मानसपट पर उभरे फिर स ये पूण रहस्य लीन
इन प्रश्नों की उत्सुकता का मैं आज बना हू पुज रूप
उत्तर धार से दे तो दो, तुम ओ मेरी सध्य अनूप !

इच्छा तो है मैं खोल सकू यह भीत भयानक मृत्युद्वार
इच्छा यह है मैं झांक सकू इस घनावरण के आर पार
उड चल आज मम राजहस सीमान गगन का वक्ष चीर
अम्बर कांप कुछ भेद खुले कुछ दलक उठे नभ गग नीर
अनुमान ज्ञान की नहीं आज प्रत्यक्ष ज्ञान की प्यास मुझे
देखू विलक्षण इस जीवन म वह नीर पानकर स्वयं मुझे ?

२६ दिसम्बर, १६ ६ —'हम विषपायी जनम क' से

डोले वालो

डोरा लिय चलो तुम झटपट छोडो अटपट चाल र
सजन भवन पहुँचा दो हमको मन का हाल विहाल, रे ।

बरसा रितु म मव सहलिया मक पहुँची श्राय र
बाबुल घर म आज चलो हम पिय घर लाज विहाय, र
उनके बिन बरसाती रातें कस कटें अचूक, रे
पिय की थाह उसीस न हो तो मिटे न मन की हूक र
डोल वालो बढ चलो तुम आया सध्या काल र।

ढली रुपहरी किरनें तिरछी हुई साझ नजदीक र
अभी दूर तक दिख पडे है पथ की लम्बी लीक, र
आज साँझ क पहले ही तुम पहुचा दो पिय गेह रे
हम कह आई हैं दुन्दर मे रात पडेगा मेह रे
घन गरजेंग रस बरसगा होगी सृष्टि निहाल रे
डोला लिय चला तुम जल्दी छाडो अटपट चाल, र।

बाबुल क घर नेह भरा है पर है द्वत विचार र
साजन क नव नेह सलिल मे है अद्वत विहार, र
हृदय हृदय म प्राण प्राण म आज मिलें भरपूर रे
पिय मय निय तिय मय पिय जब हो तब हो सभ्रम दूर रे
दूर करो पथ क अतर का यह अटपट जजाल, र
डोले वालो बढ चलो तुम आया सध्या काल र।

२८ जून, १९३१

बालकृष्ण शर्मा नवीन

आज रोम-रन्ध्रों से

आज रोम रन्ध्रों से फिर गूंजे नवस्वर प्रिय
कूक उठी हिय मुरली फिर से स्वर भर भर प्रिय।

सिहर उठा यह धूमिल धूमिल-सा ग्रीष्म गगन
झंझा के झूले में झूल लहर उठा व्यजन
घुमड़े दल के दल ये मेघ भरे बादल गन
अम्बर का वक्षस्थल घहर उठा घर घर प्रिय।

बूंदें टप टिपिर टिपिर टपकी दल-बादल से
धाराएं घिर घहरीं नभ के वक्षस्थल से
सिहर उठा मलयानिल हम सिहर बेकल से
काँपा मन उमड़ा हिय नयन भर झर भर प्रिय।

थल जल-मय आप्लावित कल्लोलित हुआ त्वरित
हुए चपल सजल तरल अगणित ये स्रोत सरित
जल-बुदबुद बन बिगड़े हृदय हुआ नेह भरित
श्वास श्वास प्राणों की बाल उठी सर-सर प्रिय।

पुलकित हो झूम उठे वट पीपल नीम आम
कुहू-कुहू कुहुक उठी कोयलिया पूर्णकाम
हम अपूर्ण घूर्णित मन मौन रहे हृदय थाम
डोल रहे आम तले हम आह भर भर प्रिय।

४ अगस्त, १९४०

—'क्वासि' से

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

अब न मथो यह जीवन

बस-बस अब न मथो यह जीवन
इन इन्द्रिय मथन कष्टों का और न अधिक करो उत्पीड़न !

ज्यों ज्यों मथा गया जीवन-रस त्यों-त्यों और ज़ोर से उफना।
मन्थन के दायें बायें इन गन्नाटों में उलझा लघु मन
सोचा था यह सतत मथन गति शायद कर दे जीवन सम रस
पर प्रति गति ने अन्तस्तल को किया और भी भग्न उन्मन !

सच कहता हूँ कि आ गया हूँ आजिज़ इस निहुग हाथी से
लौटा दो मुझको मेरा वह छोटा-सा अंकुश मद मर्दन
मदोन्मत्त मातंग शृंग पर मुझे चढ़ाया खाली हाथों
अब ताली दे क्या बिखराते हो निज अट्टहास मुक्ता-स्वन ?

प्रिय मेरी वेदना-व्यथा की ओर तनिक तो तुम अवलोको
यह प्राण-तपन, यह जीवन-नभ यह घन घटाटोप यह गर्जन !
क्या द्विजन्म सिद्धान्त भ्रान्त है क्या यह सारा भ्रम ही भ्रम
यदि सच है तो मम द्विजन्म का घंटा न बजे घन घन घन !

मुझे बहुत ही भली मानी है मथित निर्धारित पगडंडी
अब तो श्रमित-मथित मन होने दो हे मेरे मानी मन धन
इन इन्द्रिय-मथन दंडों का और न अधिक करो उत्पीड़न
बस-बस अब न मथो यह जीवन !

८ जनवरी, १९४०

—'अपलक' से

बालकृष्ण शर्मा नवीन

ओस बिन्दु सम ढरके

हम तो ओस बिन्दु सम ढरके
आये इस जड़ता में चेतन तरल रूप कुछ धर के।

क्या जाने किसने मनमानी कर हमको बरसाया
क्या जाने क्यों हमको इस भव मरुथल में सरसाया
बाँध हमें जड़ता बन्धन में किसने यों तरसाया
कौन खिलाड़ी हमको सीमा बन्धन में हरषाया
किसका था आनन्द कि उतरे हम नभ से झर झर के ?

आज वाष्प बन उड़ जाने की साध हिये उठ आई
मन पंछी ने पंख तोलने की रट आज लगाई
क्या हमने अनाहूत ने आमन्त्रण की ध्वनि सुन पाई
अथवा आज प्रयाणकाल की नव मंगल ध्वनि छाई
लगता है मानो जागे हैं स्मरण आज अम्बर के।

५ जुलाई, १९४७ — स्वामि' मे

नश याम कल्पमान

निशि का प्रतिक्षुद्र याम आज हुआ कल्पमान
अस्थिर चल चपल निमिष आज हुआ युग-समान
नश याम कल्पमान !

अस्थिर में होता है जब भावन्त समावेश
सन्मय हो जाते हैं जब अनित्य काल-देश
तब होते हैं विलुप्त अचिर चलन-कलन-क्लेश
सुन्दर शिव सत्य सकाल रहता है एक शेष
पाता है परिवर्तन तब चिरता का प्रमाण
चपल निमिष युग समान !

निशि के चंचल क्षण को दे तुम स्थिर स्वरूप
छिटकाते स्मित किरणें हरते घन-तम कुरूप
भरे हुए पूर्णार्पण निज नयनों में अनूप
आये साकार बन मेरे तुम चिर अरूप
उस क्षण अंकित होता क्या न अमरता विधान
नश याम कल्पमान !

एक निमिष-सम्पुट में भरकर आनन्त्य प्रहर
नयनों से कौतुक कर मुसकाये तुम प्रियवर।
मृणमय यह कालखण्ड जिसको क्षण क्षण कहकर
हमने है जग-जन-गण वही हुआ अजर अमर।
खूब दिया तुमने इस क्षण को अमरत्व दान।
नहीं याम कल्पमान।

श्रवणों में नयनों में प्राण-व्यंजन में मन में
अंकित है अमर छाप राम राम कण-कण में
गूँजा अनहद निनाद तव कण्ठ अनन्त में
व्योम-गान-तान उठी मेरे प्रिय तव स्वन में
आज निखारा तुम्हें वदन वरन सुजान।
ओ मेरे रुचिर प्राण।

—'क्रान्ति' से

30 अगस्त, १९४२

विप्रयोग शीत भार

ठिठुरे हैं हाथ पाँव सब शरीर कम्पमान
रोम रोम कंटकसम ठिठुर गये विरल प्राण ।

शिलीभूत पिंडबद्ध धमनीगत रुधिर धार
घनीभूत श्वास-पवन जडीभूत हिय विचार
अब तो है असहनीय विप्रयोग शीत भार
मंदस्मित किरणों से विहँस करो प्राण दान ।

मेरे प्रिय मन्दादर शीत श्वास पवन दूत
मत भेजो इस दिशि तुम मैं हूँ अति पराभूत
बरसाओ तुम न उपल अनपेक्षा घन प्रसूत
थरथरथर काँप रहा रहसि हृदय मन अजान ।

काँव काँव टुइय टुइय बोल रहे काक कीर
चँ चुक चुक करती यह कापी खग वृंद भीर
शीत बाण बरसाता आ रहा सनन सन समीर
पीर भरे अन्तर में ठिठुर गये सरस गान ।

धन गत यह पौष-तरणि क्षीण तेज, मानो मृत
निस्प्रभ सा काँप रहा मन्द मन्द धूमावृत
ऋतु ऋतुवर सुकृत किरण आज हुई विकृत अनत
एक क्षण विहँस रखो दिनकर का गलितमान ।

बालकृष्ण शर्मा नवीन

हवा हहर श्रवणो म कहती यह शीतवात,
तेरे प्रिय विमुख हुए अब तेरी क्या बिसात
सकल मनोरथ तेरे सपने हैं मनसि जात
सच है क्या यह सब कुछ बोलो तो सुरस खान।
ठिठुरे हैं विकल प्राण।

—'रश्मि रेखा' से

११ दिसम्बर, १९४२

हम अनिकेतन

हम अनिकेतन, हम अनिकेतन
हम तो रमते राम, हमारा क्या घर, क्या दर, कैसा वेतन?

अब तक इतनी यों ही काटी, अब क्या सीखें नव परिपाटी
कौन बनाए आज घरौंदा हाथों चुन-चुन कंकड़ माटी
ठाट फकीराना है अपना, बाघाम्बर सोहे अपने तन।

देखे महल, झोंपड़े देखे, देखे हास-विलास मजे के
संग्रह के सब विग्रह देखे, जँचे नहीं कुछ अपने लेखे
लालच लगा कभी, पर हिय में मच न सका शोणित-उद्वेलन।

हम जो भटके अब तक दर-दर, अब क्या खाक बनायेंगे घर
हमने देखा सदन बने हैं लोगों का अपनापन लेकर
हम क्यों सनें ईंट-गारे में, हम क्यों बनें व्यर्थ में बेमन?

ठहरे अगर किसी के दर पर कुछ शरमाकर, कुछ सकुचाकर
तो दरबान कह उठा, बाबा, आगे जा देखो कोई घर
हम रमता बनकर बिचरे, पर हमें भिक्षु समझे जग के जन।
हम अनिकेतन।

अप्रैल, १९४० — 'रश्मि-रेखा' से

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

एक बिन्दु

एक बिन्दु इन्दु मथित सिंधु लहर छोड़ चली
लघु ससीम औ असीम बीच लगी होड़ भली।

निज विराट रूप त्याग बिन्दु हुई तरंगी
अपरिमेय अमित मापराशि हुई अवगी—
अगमा गतिगम्य हुई अनिलानल रंग रँगी
नानाविध रूप धरे विचर रही गली-गली
बिन्दु सिंधु छोड़ चली।

हर हर करती गतियुत द्रुत मारुत रथारूढ़
अम्बर में विचरण की हिय में भर व्यथा गूढ़
लख दिक्-काल थाह निकली यह बिन्दु मूढ़
निज असीम अगम गहन गृह में मुँह मोड़ चली
बिन्दु सिंधु छोड़ चली।

क्षण में यह वाष्प बनी क्षण में वह ओस बिन्दु
क्षण में घन-वारि उपल फिर चातक तोय बिन्दु
किन्तु आत्मतुष्टि कहाँ यदि न प्राप्य गहर सिंधु
तन्मयता शून्य विलग रहनि इसे आज खली।
बिन्दु सिंधु छोड़ चली।

अम्बर का भ्रमण किया वठी भूगभ बीच
सरसाया भव जीवन पादप-तृण सीच-सीच
देखा चिरकाल कलन अवलोका ऊँच नीच
किंतु न क्षण भर को भी गृह की सुधि रच टली !
बिंदु सिंधु छोड चली !

ओ गभीर स्नेह सिंधु ओ सुदूर इंदु पूण
इक बौरी बिन्दी का हुआ सफल दप चूण
विसग रूप अब असह्य असहनीय चक्र पूण
घहर उठा सम्मुख अब बीत चुकी युगावली !
बिंदु सिंधु छोड चली !

२२ १०८३ —‘अपलक से

सदा चाँदनी

कुछ धूमिल सी कुछ उज्ज्वल सी झिलमिल शिशिर चाँदनी छाई
मेरे कारा के आँगन में उमड़ पड़ी यह अमल जुन्हाई।

अरे आज चाँदी बरसा है मेरे इस सूने आँगन में
जिसमें चमक आ गई है इन मेरे कुंठित कण-कण में
उठ आई है एक पुलक मृदु मुझ बंदी के भी तन-मन में
भावों की स्वप्निल पुड़िया में मेरी भी कल्पना नहाई,

मैं हूँ बन्द सात तालों में किन्तु मुक्त है चन्द्र गगन में
मुक्ति बह रही है क्षण-क्षण इस मन्द प्रवाहित शिशिर व्यजन में
और कहाँ कब मानी मैंने बंधन-सीमा अपने मन में!
जग-जन गण की मुक्ति सन्ध्या ले आई चन्द्रिका-जुन्हाई!

मैं निज बन्द कोठरी में हूँ भी चाँदनी खिली है बाहर
इधर अँधेरा फैल रहा है फैला उधर प्रकाश मनोहर
क्या मानूँ कि ध्वान्त अविजित है जब है विस्तृत गगन उजागर
मेरे खपरैलों में भी एक किरण हँसती छन आई!

मास वर्ष की गिनती क्या हो वहाँ जहाँ मन्वन्तर जूझें
युग परिवर्तन करने वाले जीवन वर्षों को क्या बूझें
हम विद्रोही वहाँ हमें क्या अपने मग के कंटक सूझें
हमको चलना है हमको क्या हो अँधियारा या कि जुन्हाई!
कुछ धूमिल सी कुछ उज्ज्वल सी हिय में सदा चाँदनी छाई!

■ फरवरी, १९४८ —'रश्मि रेखा' से

भावी की चिन्ताएँ

भावी की चिंताएँ सम्मुख अब आई हैं
विषम समस्याओं को घेर घेर लाई हैं।

प्रश्नों की उलझी सी मालाएँ गले डाल
बन न मुण्डमाली सा आया है विकट काल
सर्वनाश का श्मशान जाग उठा है कराल
अट्टहास करती सब जोगनियाँ धाई हैं।
विकट समस्याएँ बन घिर घिर ये आई हैं।।

मानव की छाती पर चिह्नित हैं अरुण चिह्न
मानव की वाणी का अर्थ भेद भिन्न भिन्न
मानव का जीवन है अश्रु स्वेद रक्त क्लिन्न
मानव ने ही अपनी गाँठ उलझाई हैं।
भावी की चिंताएं सम्मुख अब आई हैं।।

आज बना है मानव निरवलम्ब अनिकेतन
आज निराश्रित-से हैं सब जग जन गण के मन
विजय-मत्त जड़ता है पराभूत है चेतन
परवशता की मानव दृग में परछाई है।
विषम समस्याएं ये घिर घिर कर आई हैं।।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

उलभा है वयक्तिक सामाजिक तारतम्य
भावी क्षण रहे नहो कल्पना विचार-गम्य
हिय म क्स आय कोई मनुहार रम्य
आज अनिश्चितताए सभी ओर छाई हैं।
भावी की चिन्ताएँ सम्मुख अब आई हैं।।

११ जून, १९४४ —'क्वासि' मे

उड्डीयमान

निशि के दश दिशि पथ में फैलाय पंख जाल
गति पाकर आज हुआ यह अण्डज भी अकाल।

पंछी उड्डीयमान निज संभ्रम हृदय जान
विकल प्राण ढूँढ़ रहा निज चिर अश्वत्थ डाल।

अम्बर के बीच चली शाश्वत की टोह भली
अन्तहीन इस पथ में साध ने किया कमाल।

दूर देश दूर नगर अद्भुत अनात अगार
किंतु प्राण पंछी की अथकित अपरुद्ध चाल।

शून्य दिशा पवन शान्त नभ-पथ दुर्गम नितान्त
कौन प्रेरणा अगम्य प्राण को रही उछाल।

श्वास क्षुब्ध चंचु रुद्ध किन्तु लगी लगन शुद्ध
डैनों की सन सन में जागरूकता विशाल।

उड़ना है उड़ना है पीतम दिशि मुड़ना है
योग नहीं कंचन हो पिय-पद में प्रणत भाल।
फैला है पंख जाल।।

७ जनवरी, १९३६ — 'क्वासि' से

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

मधुमय स्वप्न रँगीले

बन बनकर मिट गये अनेकों मेरे मधुमय स्वप्न रँगीले
भर भरकर फिर फिर सूखे हैं मेरे लोचन गीले गीले।

मेरा क्या यौवन, क्या मेरी चंचल तूली, क्या मेरे रँग
क्या मेरी कल्पना हँसिनी मेरी क्या रस रामरति उमँग
मैं रूठ का रंग रूप चितेरा मैं कब विचर सका रंग-कुल सँग
मन-स्वप्नों के चित्र स्वयं हो बन बन कर न मिटे हठीले
भर भरकर फिर फिर सूखे हैं मेरे रंग-पात्र रँगीले।

कलाकार कब का मैं प्रियतम कब मैंने तूलिका चलाई
मैंने कब यत्नत बना के मन्दिर में वर्तिका जलाई
यों ही कभी कांप उठी है मेरी अँगुली और कलाई
यों ही कभी हुए हैं कुछ कुछ रसमय कुछ पाहन अरमाले।
बन-बनकर मिट गये अनेकों मेरे मधुमय स्वप्न रँगीले।

मैंने कब मनोवृत्ता फूँकी जग के कठिन शैल पाहन में
मैं कब पाया प्राणस्फुरण कब अपने अभिव्यंजन वाहन में
मुझे कब मिले सुन्दर मुक्ता आनाणव के अवगाहन में
यदा-कदा हैं मिले मुझे तो तुम जैसे कुछ अतिथि नजाले।
यों ही बन बनकर मिटे हैं मेरे मधुमय स्वप्न रँगीले।

मेरे स्वप्न विलीन हुए हैं किंतु शेष है परछाईं सी
मिटने को तो मिटे किंतु वे छोड़ गये है इक झाईं सी
उस झिलमिल की स्मृति रेखा में हैं वे आँखें अकुलाई सी
उसी रेख से बन उठते हैं फिर फिर नवल चित्र चमकीले
बन बनकर मिट गये अनेकों मेरे सपने गीले गीले।

३ मई, १९४८ —'क्वासि' से

अरुणा सुकुमारी

रुन झुन गुन गुन रुन झुन गुन गुन अमरी पाँजनिया गुंजारी
तन मन प्राण श्रवण ध्वनि नादित आई यह अरुणा सुकुमारी।

वन वन में कम्पन निस्पन्दन भर भर विचरा सनन समीरण
वन अवलियों के अन्तर से गूँजे नव-नव स्वागत के स्वन
सिहर उठे जग के रज कण कण पुलकित प्राण, खिल उठा चेतन
जगत खिल मानो अरुणा ने अपनी अँखियाँ सजल उघारी
बजी भृंग पाँजनियाँ आई ठुमुक ठुमुक अरुणा सुकुमारी।

किरण मार्जनी से मृदुता ने दूर किया वह दुर्गम तम घन
अरुण अरुण निज कोमल-कर से चमकाया अम्बर का आँगन
लुप्त हो चले ग्रह तारक गण, विहँसी सकल दिशाएँ मुद मन
अम्बर से अवनी तक लहरी अरुणा की सतरंगी सारी
गगन अटा से हँस मुसकाती उतरी नव बाला सुकुमारी।

हँसी मेदिनी हँस शैल गण तरु लतिकाएँ हँसी अकारण
कलियाँ हँसीं पर्ण-तरु हुलसे गान कर उठे सब द्विज चारण
गूँजा मंत्र-छंद उच्चारण पूर्ण हुआ तम मौन निवारण
अनहद नाद मगन नभ मंडल नाद मगन सब गगन विहारी
तन मन श्रवण निनादित करती आई यह अरुणा सुकुमारी।

३० नवम्बर, १९४३ —'रश्मि रेखा' में

एक नीम

खड़ा हुआ है एक नीम यह किसी निराश्रित गेह के द्वारे
मानो कोई अलख जगाता सिद्ध खड़ा हो बिना सहारे
ध्यान मग्न सा अमल अचल सा वीतराग यह वल्कलधारी
कितनी ही दुख दर्द कथाएँ देख चुका है बारी बारी
खड़ा हुआ है उस तापस सा जिसकी सन्तत चिंतन ज्वाला—
मानो दगी सबल मनसा अभिनव ज्वालि जगाने वाला।

अगणित व्यथा कल्पनाएँ ये इसने यहीं विये हैं क्रन्दन
अगणित बार विलोका इसने कृषकों के दृग जल का प्लवन
इसने सुघड़ किसान-वधूटी देखी थिथड़ों में अरमान
इसने नर कंकाल विलोके केवल महुआ पर रह जाते
इसने देखे नंगे बच्चे नित बिलखाते भूखे प्यासे
इसने देखे सभी ग्रामजन जीवन्मृत से नंगे भूखे।

जिस घर के दरवाजे तरु है वह घर अब सुनसान हुआ है
साँय साँय करता है मानो वह एकांत श्मशान हुआ है
उस घर में आमख खंडहर में जो कृषिजीवी दम्पति रहते थे
जो कु समाज व्यवस्था का प्रति अनाचार निशिदिन सहते थे
वे हो अब दुर्भिक्ष प्रताड़ित जर्जर देह भूख के मारे
चले गये हैं कहीं ! नीम को छोड़ अकेला अपने द्वारे !!

रायी घर की टूगी भीतें वूना नाम फूटकर रोया
ग्रम्बर न भी बिनत्र विलखकर मा धरती का चीर भिगोया
राजपुत्र सिद्धाथ चला था निजगृह त्याग ग्रमरता पान
ग्रौर उसीक देश निवाला चल खाजन दान दान ।
कौन पा सका परम ग्रमर-पद या बिन मुट्ठी भर दानो क ?
कम पायें जन ग्रपनापन जबकि पड लाल प्राणा क ?

दनान्दियां का वृद्ध नीम यह ग्रमित व्यथित ३ ग्रन्तरतर म
कहा छिपाय रह कब तलक ग्रमित व्यथा निज ग्रभ्यन्तर म ?
हहर-हहर कर तटप रही है इस पान्प की पत्ती-पत्ती
माना सचित दुख की वातें वह डालगी रत्ती रत्ती ।
यह पुराण मा री जड-पादप कुछ कहन या है ग्रातुर सा
यह मौनी भो ग्राज बन रहा नव सन्गन-कहन चातुर सा ।

म पहुचा भुटपुट समय उस लवावा तरवर क नीच
भी कुछ क्षण को मैंन ग्रपन भारी भारी लावन भीच
नीम उसी क्षण नुभन बाला— ग्रा गतिमय दा पग वाल
मुझ निगति मुझ ग्रचल विवरा का ग्राकर पुछता व्यथा टटाल ! !
तू कब तक दखता रहुगा नित्य उजडत या घर क घर ?
कब तक ताण्डव नृत्य करगी यह विभीपिका इस धरता पर ?

कान छिपन क मर माथी क इस टूट घर क वासी
बिखर गए व जिनक जिन यह कुरी हो रही ग्राज ग्पासी ?
बरसा क मर सहगामो मुझ कर गय ग्राज ग्रकला
कहा इधर वह जा बचपन म मरी छाया म था खला,
कहाँ गया वह इपार-वधू जा नित, करती थी हसी ठटाली,
मावन भादों म रखती थी जा झूम मरी पत्ती निबोली ?

ओ तू शिक्षित मनुज बना तो कब भड़केगा तव क्रोधानल ?
बोल, अरे सुस्थिर कब होगी तेरी चित्त वृत्ति दोलाचल ?
भवति न भवति कुशंकाओं में तू कब तक यों पड़ा रहेगा ?
उकठ-काठ मारा-सा तू यों पथ में कब तक खड़ा रहेगा ?
मैं अग भी बदला करता हूँ विकट काल-परिवर्तन के संग
ओ जंगम तू क्या न लखेगा बदले हुए ज़माने का रंग ?

कभी-कभी मेरी डालों पर दूर देश के पंछी आकर
उन देशों के जन परिवर्तन गायन गाते मुझे सुनाकर ।
सिहर उठा करता हूँ मैं वे बातें सुन निज अन्तरतर में
और निरख अपने मानव को रोया करता हूँ निशि भर मैं ।
क्या वह बल वह अतुल पराक्रम मम मानव में नहीं जगेगा ?
अरे काल विप्लव के रस में कब तक मेरा मनुज पगेगा ?

कब तक निरखूँ निज मानव के जीवन की वेदना व्यथा यह ?
कब तक गरमाऊँ मैं सुन सुन पाप जनों की कीर्ति कथा वह ?
तू कब तक सीखेगा करना प्रलयंकर हुंकार भयंकर ?
कब प्रारम्भ करेगा मग मग तू सिरजन मल्हार भयंकर ?
बोल अरे ओ प्रतिनिधि मानव तू शिक्षित संस्कृत विज्ञानी ।
तूने समय बयार दिशा गति क्या अब तक न अरे पहचानी ?

मन उस क्षण सुनी नीम की यह कटु सत्य व्यथा की वाणी
और छलछला उठा उष्ण सा मेरे मीलित दृग में पानी ।
किन्तु किया अनुभव कि हृदय में सुलगी है विप्लव चिनगारी
मैंने देखा कि उठ रहे हैं निद्रा से मेरे नर नारी ।
मैंने देखा दूर क्षितिज में विहँस रहे हैं मेरे सपने ।।
मैं बोला— आ निम्ब विलम्ब मत आते हैं अब शुभ दिन अपने ।

१९४५ —'सरस्वती' से

बालकृष्ण शर्मा नवीन

प्राप्तव्य

इस धरती पर लाना है
हम खोज कर स्वर्ग
कहीं यदि उसका ठौर ठिकाना है।

यदि वह स्वर्ग कल्पना ही हो
यदि वह शुद्ध जल्पना ही हो
तब भी हम भूमि माता को
अनुपम स्वर्ग बनाना है।
जो देवोपम है उसको ही इस धरती पर लाना है।

और स्वर्ग तो भोग लोक है
तदुपरान्त बस राग शोक है
हम भूमि को योग लोक का
नव अपवर्ग बनाना है।
जोकि देवदुर्लभ है उसको इस धरती पर लाना है।

बनना है हमको निज स्वामी
ऊर्ध्व वृत्ति सन चित् अनुगामी
वसुधा सुधा सिंचिता करके
हम अमर फल पाना है
जोकि देवदुर्लभ है उसको इस धरती पर लाना है।

है आनन्द-जात जन निश्चय
सदानन्द में ही उनका लय
चिर आनन्द वारि धाराएँ
हम यहाँ बरसाने हैं
जो दैवोपम है उसको ही इस धरती पर लाना है !

१ जून, १९५१ —'विनोबा स्तवन' से

तुम युग-परिवर्तक कालेश्वर

तुम युग परिवर्तक कालेश्वर, तुम दिक्पति, तुम चिर अजर अमर
नर जीवन चक्र-प्रवर्तक तुम, तुम गति दाता, तुम ज्योतिष्वर
तुम सन्मय, चिन्मय, तन्मय, तुम मृण्मय, तुम वन्द्य, ध्येय, अकाम!
तुम व्रत रत, तुम उपवास निष्ठ, तुम नित अभंग, तुम घन धाम
तुम कर्म निरत रवि तारक सम, तुमने न रंच जाना विराम
तुम महानिष्क्रमण क्षण में भी अन्तर बोले! हे राम, राम!

थे मृत्यु ध्यान घन आरोपित ध्यानी-मदन तव युगल चरण,
तव घन रक्तासन-रुद्ध हस्त थे उठे ग्रहण कर जन-वन्दन,
तव नयनों में थी छलक रही गंगा-यमुना जन रंजन की
तव मुखमण्डल पर आभा थी तन्मय मन सन्ध्या-वन्दन की
उस सन्ध्या को वास्तव में क्या कर गया काल तुमको कवलित ?
तुम चल अथान प्रवाह विवश ? तुम ध्रुव कूटस्थ अडिग अविचलित।

तव रक्त दान में कहाँ बुझी प्यासी दानवता का तर्पण ?
चिर प्रेम प्रतिष्ठा कहाँ हुई ? हो गया यदपि तव प्राणार्पण
तुमने मूँदी अपनी आँखें तिमिरावृत हुआ हमारा मग
निज प्राण दे चले तुम तो, पर निष्प्राण हो गया है यह जग
थे एक तुम्हीं तो यहाँ जो कि उत्प्राणित करते थे कण कण
तव बल पर ही तो गठित युत थे हम ऐसे माटी के भाजन।

बालकृष्ण शर्मा नवीन

चिर प्रेम प्रतिष्ठा कहाँ हुई ? परितृप्त हुई कब दानवता ?
कब बुझी आग यह हिंसा की ? उन्मुक्त हुई कब मानवता ?
मानव जो रँग रहा है या वह ऊर्ध्वग्रीव कब हुआ अहो ?
सन्निष्ठा की अंगुलियाँ ने मानव हिय को कब छुआ अहो ?
तो क्या समझें कि हुआ निष्फल बलिदान तुम्हारा यह पावन ?
तव जीवन का उत्सर्ग कहो, क्या नहीं, हो सका जन भावन ?

है प्रश्न यही सम्मुख कि द्विपद मानव क्या है ? उसकी गति क्या ?
है केवल राग पुंज पशु वह ? उसकी है अधोगमन रति क्या ?
यदि यही सत्य है तो फिर तुम क्या मानव योनि धरे आए ?
यह द्विपद अधोगति रत है तो तुम ऊपर को कैसे धाए ?
बापू यह बुद्धि भ्रमित सी है बापू जन मन उलझन में है
मानव क्या तुम हो भी बापू या मानव हम पथ जन हैं ?

तुम प्राण चढ़ाकर चले और हम मानव द्वेष राग रत हैं
तुम निज शोणित दे चले और हम तो ज्यों के त्यों प्रवरत हैं
यह हिंसा घृणा स्वार्थपरता यह दस्यु वृत्ति यह कायरता
आक्रांत किये है हम और, है जन प्रवृत्ति दुर्भाव रता
नश्वर मानव तन धर कर तुम इतने ऊँचे क्या हुए सन्त ?
वामन जन मन कल्पना पुण्य तव चरण-स्मृति किमि छुए सन्त ?

कितने कितने बलिदान किये मानव की पशाविरता ने।
पर रंच प्रभावित किया नहीं, जन के मन को सात्विकता ने
तुम औ ईसा सुकरात सभी कर गए प्राण उत्सर्ग यहाँ
पर जन बौना ही रहा और उतरा न भूमि पर स्वर्ग यहाँ
हिय बीच क्या न उन्भ्रांति उठे मानव की यह गति विधि लखकर
नर है घातक नारायण का या सोच क्यों न हिय आए भर ?

जिस ठौर पड़े तव चरण वही वह भूमि तीर्थ बन गई सही,
पर धिक् हमको हम बना रहे अपवित्र वही तव पुण्य मही
क्या यही सत्य है कि तव पुण्य, बलिदान व्यर्थ हो गया यहां?
तव प्राण अपहरण का यों ही क्या यह अनर्थ हो गया यहां?
यों शंकातुर हो उठते हैं हम निपट अल्प विश्वासी जन
यों भ्रान्ति भरित हो जाते हैं हम ऐसे जन के लघु-लघु मन।

—'आजकल' से

अक्टूबर, १९५५

बालकृष्ण शर्मा नवीन

अदृष्ट चरण वन्दना

वंदन कर लूँ आज तुम्हारे अडिग अकंपित उन चरणों में
जिनकी महिमा रही अगोचर जन साहित्यिक अधिकरणों में।

तुम अज्ञात नाम जन सेवक तुम सैनिक तुम वीर धुरंधर
तुमने नव संग्राम श्रवण की क्षमता दिखलाई साहस कर
चरण तुम्हारे चले अशंकित अति सत्वर अनजान पथ पर
मानव-प्रगति हुई प्रतिलक्षित तव चरणों के आचरणों में।

चरण तुम्हारे वे जिन्होंने दुर्गम शूल किये अभिलषित
जिनकी निर्भय अच्युतता ने किये अनेक हृदय निस्पन्दित
जो नवीन निर्दिष्ट मार्ग पर मुदित बने चल निपट अपरिचित
वे दृढ़ चरण छिप गये हैं जो गहन विस्मरण आवरणों में।

वे तव नूतन चरण कर गये अभिनव जन यात्रा पथ निर्मित
तुम वे सैनिक जो आज्ञा पर समुद कर गये प्राण समर्पित
आज तुम्हारे तप प्रसाद से है भारत जन गण हिय हर्षित
तव शोणित कण अब पुष्पित हैं नवयत्नों के अवतरणों में
वंदन कर लूँ आज तुम्हारे अडिग अकंपित उन चरणों में।

२६ जुलाई, १९५८ — हम विषपायी जनम के से

दुराव

कुछ रहस्य है ऐसा
जिसे तुम्हारे विश्वासी जन भी
तुमको नहीं बताते
तो तुमको क्या हो इसमें अचरज ?

सब जन अपनी खिचड़ी
पका रहे हैं अपने चूल्हे पर
तुम्हें क्या पड़ी है जो
देखो कौन पके हैं कि कच्चे ?

भाग्य सराहो अपने
कि तुम रह जाते हो दूर सदा
विपद क्या मोल लोग
गुप्त मंत्रणा एवं यंत्रणा है।

अपनी अपनी डफली
अपना अपना राग गीत अपना
नियम न हो यह दूषित
यदि न बनें जन क्षुद्र स्वार्थ-केंद्रित !

बालकृष्ण शर्मा नवीन

स्वयं बजाने से ढप
ठीक ताल गति सीखेगा मानव
क्या गति होगी उसकी
तुम्ही बजाते रहे ढोल ढप जो ?

और बिना आलाप
अपना राग सिद्ध स्वर कैसे हो
गाओ तुम जो चाहो
पर औरों के कंठ न सुस्वर हों !

अच्छा है वे तुमने
निज संबंधित बातें नहीं कहते
करूं प्रशंसा उनकी
कि है आत्मविश्वास उन्हें इतना !

हां पर एक खटक है
कि जब गोपनीयता रहे इतनी
तो क्या संग चलने में
क्या कोई शुचि रुचि रह जाती है ?

१२ जून, १९८५ — 'इस विपथगामी जनम के' से

दोहे

विचरहु पिय की डगरिया बसहु पिया के गाँव
पिय की ड्योढ़ी बैठि कै रटहु पिया को नाँव ।

रात घनेरे पाख की, दीपक हीन कुटीर
आय सजावहु दीयरा हियरा भयो अधीर ।

फूल्यो यह जीवन विटप, फर्यो आदि अभिशाप
सन्तापी हिय करि रह्यो नीरव मौन विलाप ।

विहँसी झूला झूल प्रिय मम रसाल की डाल
कूकी कोकिल सी तनिक गूँज सब दिक्-काल ।

आऊँ कौं है निमिषवत अन्तहीन यह काल
जाऊँ कौं छिन हू लगत ब्रह्म दिवस विकराल ।

हंसा उड़े अकास में तऊ न छूट्यो द्वन्द
मन अरुझायो हो रह्यो मानसरोवर-फन्द ।

हम विराग आकास में बहुत उड़े दिन रैन
पै मन पिय-पग राग में लिपटि रह्यो बेचैन ।

सरद जुन्हाई अरु कहा कहाँ वसंत उछाह
जीवन में मरु रचि रह्यो चिर निदाघ को दाह ।

सह लियो निष्ठा सहित पायो घृणा अपार
सेवा को सेवा मिल्यो यह कृतघ्न व्यवहार ।

हम विषपायी जनम के सहैं अबोल कुबोल
मानत न नकुरा अनरस हम जानत अपनो मोल ।

पंछी बोलत चहचहक सलिल करत कलनाद
सब जग वनिमय ह्वै रह्यो हम मौन उन्माद ।

व्यर्थ भये निष्फल गये जोग साधना यत्न
कौन समेटै धूरि जब मन में पिय सो रत्न ।

यह धूनी की राख यह कहँ पिय चरण पराग
कहा बापुरो विरति यह कहा स्नेह रस राग ?

अरुणा भई विभावरी ढूँढत पिय को गाँव
कित पिया की डगरिया कित पिया को ठाँव ?

है या जग की मृत्तिका कछुक नवीन महान
जामें मिलि ह्वै जात है चेतन चेतन हीन ।

सरसुनि की अनूप कब रह्यो तुम हृदय में
कछु छाया कछु धूप सरसावहु मन गगन बिच ।

बीत चली वासन्ती वेला

[कवि की अंतिम कविता]

लो बीत चली वासन्ती वेला जीवन की
धूमिल हो चली ललित स्मृति कल्पित फूलों की,
बिहँसा होगा उद्यान कभी मन आँगन में—
अब तो है स्मृति केवल जीवन की भूलों की।

है कुछ-कुछ स्मरण कि प्राची में था जीवन रवि,
वह चमक रहा था पूर्व क्षितिज में तेजवान,
पर जो अब आकाशामुख होकर के देखा—
तो देखा प्राय: पूर्ण हुआ है दिवस-यान।

सुन उस प्रभात में मुक्त पंछियों का गायन,
सोचा था, जीवन होगा मंगल गायनमय,
पर, अब जब आ पहुँची श्यामा सन्ध्या वेला—
तो देखा रूँधे कण्ठ में निकली एक न लय।

अनभिज्ञ अराधना पूजन, दिग् भ्रमित [illegible]
छुट गए यम नियम ध्यान [illegible]
श्वासें न सधीं आसन न जमा, धा [illegible]
अस्तित्व रहा विश्वास [illegible]

बालकृष्ण शर्मा नवीन

क्या मिला ? नहीं कुछ भी तो मिला यहाँ मुझको,
जीवन यह एक मिला था वह भी खो बैठे।
क्या ही विचित्र लीला है किसी खिलाड़ी की
हम एक भले थे किंतु व्यर्थ दो हो बैठे।

पर, बहन, एक तुम हो कि नहीं भूली उसको
जो है नित भूला हुआ स्वयम् अपने को भी
भर देती हो तुम निज राखी के धागों से
चिर मूर्तिमान उसके अमूर्त सपने को भी।

यह विमल तुम्हारी राखी का सुकुमार सूत्र
कारागृह में कुटिया में या निर्जन वन में
सब ठौर पहुँचता है देवी वरदान रूप
भर देता है कंपन यह रज के कण-कण में।

११ सितम्बर, १९५५ —साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' से

वर्षा लोके

कौन बात ऐसी है मेरी जो तुमसे हो छिपी, सलोने ?
तुम तो झाँक चुके हो मेरे अन्तस्तल के कोने-कोने।

जब कि नील अम्बर में श्यामल घन का चँदुआ तन जाता है,
उपवन जब सिहर उठता है, वन कम्पनमय बन जाता है
उन घड़ियों में तुम जानो हो, क्या-क्या मेरे मन आता है
खूब जानते हो, उस क्षण मैं क्या लगता हूँ कुछ-कुछ रोने,
कौन बात ऐसी है मेरी जो तुमसे हो छिपी, सलोने ?

ये घन-गन जो इधर पधारे, आज उधर भी आए होंगे
जो मेरे कारागृह छाए वे वाँ भी तो छाये होंगे,
जो लाये रोमांच इधर वे पुलक उधर भी लाये होंगे,
तुम भी भीजोगे इनसे जो आए हैं यों मुझे भिगोने,
मूरख मेघ, तुम्हारे बिन ही, आये यों मन्नितो सँजोने।

तुम्हें याद है घन-गर्जन-क्षण नित नूतन परिरम्भण-मय है
ये झटपट हवा के झोंके बने स्मरण अवलम्बनमय हैं
पर ये मेरे प्रिय यहाँ तो आज बन गये क्रन्दनमय हैं
ये सब, मँझधार कर आये हैं अपने ही में मुझे डुबोने,
और काटने दौड़ रहे हैं ये कारा के कोने-कोने।

तुम्हें याद है वह दिन, प्रियतम जब मदभरी घटा आई थी?
वह दिन जब नभ के आँगन में घन रस रास छटा छाई थी?
उस दिन तुमने भी तो हँस हँस नवरस फुहियाँ बरसाई थी!
जिनसे अब तक हैं मधु भीने मेरे हिय के कोने-कोने
कौन बात ऐसी है मेरी जो तुमसे हो छिपी सलोने?

उस दिन हम तुम दोनों बैठे देख रहे थे बादल के दल
उस दिन सिहर रहे थे पल पल प्रिय, हम दोनों के अन्तस्तल
आज वही मेघा आये हैं भर लाए हैं मगन लगन जल
देखो तो प्रिय छलक उठे हैं मेरे लोचन किसलय सलोने
कौन बात ऐसी है मेरी जो तुमसे हो छिपी सलोने?

इस बदली के लिए कहो तो क्या बरसात गई या आई?
मेरी क्या आर्द्रा चित्रा यह? प्रिय मेरी क्या शरद जुन्हाई?
क्या हेमन्त शिशिर ऋतु मेरी? मेरी कौन बसन्त निकाई!
खोकर सब ऋतु नाप चला हूँ मैं तो आज स्वयं को खोने!
ये खाली-खाली हैं भीने मेरे हिय के कोने-कोने।

२३ जून, १९४३ —'रश्मि रेखा' से

फागुन में सावन

इस फागुन में भी घिर आए, काले घोल मेघ गगन में
मानो अमित उमंग बरसाने आये ये घर आँगन में

लहर रहा है मदमाती-सी यह फाल्गुनी बयार रसीली
कर मधुपान हुई है मानो निपट बावरी और नशीली
हहर हहरकर छोड़ रहा है मदिर श्वास निज सीली सीली
ना जाने कितना मद है इस उच्छृंखल उन्मुक्त व्यजन में?
इस फागुन में भी घिर आए काले घोल मेघ गगन में

आम नीम, जामुन पीपल की शाखें झूल रहा है झूला,
मानो फागुन में ही आया वह सावन पथ भूला भूला!
आई वर्षा यहाँ शिशिर में पावस में किंशुक वन फूला!!
आज प्रकृति बैरिन ने यह ऋतु रार मचाई मेरे मन में
इस फागुन में ही घिर आए काले घोल मेघ गगन में।

मेरे सजन सलोने तुम बिन मुझको फागुन ही दूभर था
कैसे यह दोनों बीतेंगे, मुझको तो इसका ही डर था
सावन, फागुन अलग अलग भी मेरे लिये निपट दुस्तर था
अब तो होली और श्रावणी आई संग संग इस निर्जन में!
कैसे कर पाऊँगा प्रियतम, यह ज्योतिष पर्याय सहन मैं

जब फुहिया-सुइयाँ चुभती हैं, उठते हैं जब घन क्षण क्षण में
सन-सन सन सन सनन सनकती पवन लिपटती है जब तन में
तब, प्रियतम, तब परिरम्भण की उत्कण्ठा उठती है मन में,
क्या बतलाऊँ क्या जादू है असमय के भी इन घन गन में।
बना चुके हैं मन मन उन्मन फागुन के ये मेघ गगन में।

स्मरण गगन में चमक रहे हैं वे तब युग लोचन रस पाते
जब कि मनसिजों से मुझको तुम निरख रहे थे आते जाते
दृग से दृग जब मिल जाते थे तब तुम थे कुछ-कुछ मुसकाते,
आह! कहाँ वे नयन तुम्हारे! और कहाँ मैं इस बंधन में!
क्यों न आग लग जाए अब इन निरगुन फागुन के घन गन में,

१८ फरवरी, १९५४ —'रश्मि रेखा' से

हिंडोला

आओ, बलिहारी जाऊँ तुम झूलो आज हिंडोले
मैं झोटे दू, तुम चढ़ जाओ झूले प अनबोले।

मरी अमराइ म झूला पटा रसीला वाल,
चवर डुलात हैं रसाल क रसिक पण हरियाल,
रस-लोभी अलिगण मडरात हैं काले भौंराले,
सूना झूना देख उभर आत हैं हिय म छाले,

आओ पग बढ़ाओ झूना की तुम होले होले,
सजनि, निछावर हो जाऊँ तुम झूनो आज हिंडोले।
भोली सहज लाज-मोहकता निज नयना म घाले
आकर सुहरा दो मरे हिय के सुकुमार फफाले,

आन कपा दो इस झूले की रसिक रज्जु की फाँसी
मरी उत्कण्ठा को, सुन्दरि डालो गलबहियाँ सी,
क्वासि ? क्वासि ? प्यासी आँखा स बरस रहा
फुहियाँ-सी

आ जाओ मर उपवन म सजनि, धूप छँहियाँ-सी

झुक-झुक झूम झूम, खिल जाओ हृदय ग्रन्थियाँ खोले
आओ बलिहारी जाऊँ तुम झूलो आज हिंडोले।

—'रश्मि-रेखा' स

१३ दिसम्बर, १६३०

बालकृष्ण शर्मा नवीन'

क्यो उलझे मन

निरख निरख कर चहु दिशि तम घन क्यो लरजे हिय ? क्यो उलझे मन ?
लख नभ प्रागन गहन तमोमय क्षण क्षण क्या अकुलाए लोचन ?

ये कज्जल क कोट भयानक उठ हुए है भू स नभ तक ,
दुर्निवार यह घोर ग्र ध तम घिरा रहेगा बोलो कब तक ?
क्या अकुलाते हो मन मेरे ? देखो बाट प्रभा की अपलक !
हिय म भर उल्लास आशा की गाग्रो भरव क मगल स्वन !!
निरख गहन घन तिमिर आवरण क्षण क्षण क्यो अकुलाए लोचन ?

आज ध्वान्त आक्रान्त मेदिनी आज दिशा दुर्दान्त तमोमय !
आज तिमिर क य दल के दल पूर्ण कर चुक ज्योति पराजय !!
पर क्या तुमन नही सुनी है ज्योतिमय शख ध्वनि जय जय !
जागो ! दूर कह विभा आ रही श्यामा क तम पट स घन घन !
लख लख वर्तमान यह तम घन क्या लरजे जिय ? क्या उलझे मन !

दूर नही है अरे निकट ही वह प्रकाशमय मगलमय क्षण
और सदा ही तो होता है अरुणा और तमिस्रा का रण !
जो डूबे हैं आज तिमिर म हुलसेंगे वे ही रज कण-कण
य भूधर यह भू, यह अम्बर सब फिर पायगे अपनापन
निरख निरख कर चहुँ दिशि तम घन, क्या लरजे हिय ! क्यो उलझे मन ?

भूल गए क्या प्रथम प्रात का वह उल्लास लास ? वह वभव ?
वह अलिगण की गुन गुन-गुन गुन ? व प्रफुल्लित, विकसित कैरव !!
तुम भूले क्या मुदित प्रभाती गायनरत द्विज दल का कलरव ?
याद करो प्रथमा उषा कि अनिलाञ्चल की रसमय सिहरन !!
स्मरण करो निज विस्मरणा का, करो आज गहर अवगाहन !!!

फिर आएगी उषा हँसती, फिर होगा बिहान चिर सुदर,
फिर स नव भरवी छिडेगी, फिर होगी पखो की फर फर,
फिर स अरुण घटा छाएगी, फिर होगा द्रुमदल का ममर
फिर स समुद बहगा सन सन सनन सनन जागरण समीरण
लख अम्बर म तमावरण घन, क्षण क्षण क्यो अकुलाए लोचन।
२१ ११ ४३ —'रश्मि रेखा' से

दान का प्रतिदान क्या, प्रिय ?

दान का प्रतिदान क्या प्रिय ?
वय को जब दे चुका तब प्रतिग्रहण का मान क्या प्रिय ?
दान का प्रतिदान क्या प्रिय ?

स्नेह के इस हाट में मैंने न जाना भाव क्या है ?
भाव-तावों में पड़े जो वह सुरति का चाव क्या है ?
दाव पर जब प्राण हैं तब शेष भी कुछ दाव क्या है ?
जब कि दे डाला सभी कुछ प्राप्ति का फिर ध्यान क्या प्रिय ?

मैं न माँगूँगा कि मुझको निठुर तुम निज नेह दे दो
मैं न माँगूँगा कि मम मरु प्राण को कुछ मेह दे दो
मैं सतत अनिकेत क्या माँगूँ कि तुम इक गेह दे दो ?
तव अपेक्षा के गरल का कर न लूँगा पान क्या प्रिय ?

तुम न मेरे हो सको तब भी मुझे क्या शोच, प्रियतम ?
स्फटिक हीरक में कहो कब आ रही है लोच प्रियतम ?
तुम निभाओ निज निठुरता नित्य निःसंकोच प्रियतम,
या निभाऊँ मैं न अपनी नित समर्पण आन क्या प्रिय ?

ये लखो, आकाश में चमके नखत अनगिनत साजन
यह लखो मम नयन में चमका लगन अति विनत साजन
और सिञ्जन कर उठी तव गमन उत्सुक-चरण पाँजन !
तुम न रुककर सुन सकोगे गमन के कुछ गान क्या प्रिय ?
दान का प्रतिदान क्या प्रिय ?

भिक्षा

भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर
विश्व वेदना के कन जल से आप्लावित कर दो अभ्यन्तर,
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर।

छलका दो मेरी वाणी में अक्षर-स्वर की विगलित करुणा,
समवेदना भावना से तुम कम्पित कर दो यह हिय थर थर
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर।

नभ जल थल से अनिल अनल में करुण मोहिनी छवि दिखला दो
पुलक पुलक बह जाने दो प्रिय, मेरे नयनों का लघु निर्झर,
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर।

इठलाते कुसुमों का मादक परिमल मन नभ में फैला है,
अपनी निर्गुण गन्ध किरण से चिर निर्धूम करो मम अम्बर
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर।

मेरी मुग्धा व्यथा परिधिगत हुई—उसे निस्सीम बना दो,
मुक्त करो, प्रिय, मुक्त करो मम करुणा-वीणा के ये सुस्वर
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर।

२४।११।३१ —'क्वासि' से

तुम सत-चित अवतार, रे

हमरे बलम को काउ न जगाय्यो कोउ जनि गाइयो मलार रे
पगनन सों खन खन जनि करियो ना पायल झनकार रे।

हम अनगिनत बलैया ले के आई हैं पौढ़ाय रे
तनक तनक सी सजन जग हैं हैं सुकुमार सुभाय रे
सोए है पिय गहन तिमिर की कारी चादर ओढ़, रे,
रंगमहल के दीप बुझे है बलम रहे हैं पौढ़ रे
काउ न झाँकियो ग्न हँसी की मृदु किरणें द्वार रे
हमरे पिया को कोउ न जगइयो कोउ जनि गाय्यो मलार रे।

चल जागृति तू दुबकि बटिजा जहाँ द्रुमन की भीर रे
अरी, खेल के ये क्षण नाहीं छायो तिमिर गम्भीर रे
कुंजन कुंजन रोस रोस पै अरे तू नकु न डोल रे
मेरे साजन के ये मीलित लोचन पुट जनि खोल रे
हमरे रंगमहल में छाई है विश्रान्ति अपार रे
हमरे बलम को कोउ न जगाय्यो जनि काउ गाइयो मलार रे।

राग भरी कारी कोयलिया तू क्यों कूका आय रे?
कैसे के तोहि मूक कर हम याको कौन उपाय रे
तू जागृति की दूती बनि के आई है उद्यान रे
अरी कलमुँहा अभी निशा है अबहि न भयो विहान रे

कच्ची नींद अबहि पौढ़े हैं हमरे प्राणाधार रे,
तू क्या उन्हें जगावन आई ? तू क्या उठी पुकार रे ?

हम चाहत हैं नीरवता पै प्रकृति बड़ी है ढीठ रे
कोयल और पपीहा के मिस पठवत रहत बसीठ रे
आज बड़ी है होड़ प्रकृति न हमरे संग करि डाह रे।
पै हम जीतेंगी निहचैं ही पिय के हाथ निबाह रे।
तुम मति जगियो बालम जागी सोवहु पाँव पसार रे
गणिका प्रकृति कहा करि लगी ? तुम सत चित अवतार रे।।।

— 'क्वासि' से

२६ दिसम्बर, १९४२

मैं तो सजन, आ ही रही थी

क्या बजाई बाँसुरी ? मैं तो सजन आ ही रही थी
मधुर जमुना की तृषा भर नयन में ला ही रही थी।

क्या बताऊँ कब सुने थे तव सुरति आह्वान के स्वन ?
युग अनेकों हो चुके हैं जब सुना था वह निमन्त्रण।
किन्तु झंकृत हैं अभी तक उन स्वरों से प्राण तन मन,
नवल स्वर ने क्यों पुरानी कसक मस्यायी नहीं थी।।
सजन मैं आ ही रही थी।

क्या कहूँ है पथ कैसा क्या दशा है चरण तल की ?
क्या कहानी मैं सुनाऊँ आज निज यात्रा विकल की ?
स्वेद झलका भाल पर, पद तल शोणित धार झलकी
किन्तु मैं तव निठुरता पर सतत मुसका ही रही थी
सजन मैं आ ही रही थी।

क्या कहूँ कब श्याम घन बन तुम घिरोगे मम गगन में ?
क्या बताऊँ मधु पवन बन कब लगोगे तप्त तन में ?
कुछ कहा तो शरद शशि बन कब खिलोगे शून्य मन में ?
क्यों बजाई वेणु ? मैं ये प्रश्न सुलझा ही रही थी
सजन मैं आ ही रही थी।

मत बजाओ वेणु, या दिक्-काल पट आवरण में दूर,
सुन तुम्हारे मुरलिका-स्वर सिहरते हैं प्राण आतुर,
मुरझ जाता है, सजन, या हृदय का निष्काम अंकुर,
स्वर प्रणोदन क्यों? जब कि मैं मार्ग पर जा ही रही थी
सजन, मैं आ ही रही थी।

उतर आए भूमि पर सब भाव मेरे गगन चारी
आज थल चर हो गए हैं मम मनोरथ नभ विहारी,
रज-कणों में ही तुम्हें नित खोजती हूँ मैं विचारी,
सद्गुणों में, अगुणता से नित्य उक्ता ही रही थी
सजन, मैं आ ही रही थी।

याद है मैंने तुम्हारे हैं कभी पद-पद्म चूमे,
तव कमल मुख पर कभी हैं मत्त मम दृग भृङ्ग झूमे
पूर्ण अंगीकार में था लुप्त द्विविधा रूप तू-मैं!
विलग होकर भी मिलन के गीत मैं गा ही रही थी,
सजन, मैं आ ही रही थी।

४ अगस्त, १९४४ —'क्वासि' से

दूभर-सा कटता है तुम बिन जीवन, प्रियतम

दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम
चलता ही जाता है काल चक्र अति निर्मम।

कटते हैं निपट विवश ये सूने जीवन क्षण
करते ही रहते हैं हम सदा त्वदीय स्मरण
किन्तु न निर्वेद मिला आकुल है यह जीवन
एक टीस हिय में उठ आती ही है थम थम
दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम।

श्रवण काल थाली में जीवन क्षण मुक्ता सम—
ढुलक जाते हैं नित देख रहे हम अक्षय
पर उन मुक्ताओं में ग्रथित स्मरण सूत्र परम
जिसके बल भावी का होना गत में संगम
यों स्मर अवलम्बन ले काट रहे जीवन हम।

प्राणाधिक कब तक हट पायगा अन्तर पट?
फिर कब तुम आओगे सम्मुख आ जीवन नट?
मेटा है मेटा यह विकट यवनिका संकट!
तुम बिन जीवन लीला आज हुई पूर्ण विषम
दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम!

इतने दिन बीत गए फिर भी स्मृति प्यारी सी —
आ जाती है सम्मुख सिंधु स्नात क्वारी-सी —
टपकाती पलकों में जल बूँदें खारी सी!
नहीं जान पाए हैं हम यह सब भेद भरम।
दूभर-सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम।

बालकृष्ण शर्मा नवीन

वह मधुर मुख, वे अति करुण डहडह लोचन —
वह तव मुसकान मधुर, वह तव स्वप्निल चितवन, —
परम सुसंस्कृत मनोज्ञ वे नयन स्नेह-वचन, —
इन सबकी मधु-स्मृतियाँ मथती हैं अंतरतम
दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन, प्रियतम ।

अंतस्तल शून्य आज आज जगत सूना है
ओ प्राणों के पाहुन तुम बिन सब ऊना है
जीवन में व्यथा-भाव उमड़ा दिन दूना है
होरी हो रहती है हिय में घुट घुट हरदम,
दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन, प्रियतम ।

प्राण, खीझ आती थी कभी कभी जो तुम पर
उसकी स्मृति अब बेधा करती है हिय दिन भर,
क्षमा करो ओ विलुप्त चिर उदार हृदयेश्वर
हम न तुम्हें जान सके जब तुम थे परम सुगम,
अब तो तुम बिन ज्यों-त्यों काट रहे जीवन हम ।

स्मरणों की माला में फूल शूल दोनों हैं,
हिय में निर्भ्रान्ति और अकथ भूल दोनों हैं
जीवन-वन में आनन्द औ बबूल, दोनों हैं
तव स्मृति भी है औ है यह मम दुर्भाग्य अगम,
दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम ।

आज हमारे भुज ये हैं तव परिरम्भ शून्य
आज नटवत हैं हम जग में अवलम्ब शून्य
विगलित हम आज सजन, टूटा मान-दम्भ शून्य,
रो रोकर किसी तरह चलता है जीवन क्रम
ज्यों त्यों ही कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम ।

२५ नवम्बर, १९५१ —'क्वासि' से

प्राणों के पाहुन

प्राणों के पाहुन आए औ' चल गए इक क्षण में,
हम उनकी परछाईं ही से छले गए इक क्षण में।

कुछ गीला सा कुछ सीला सा अतिथि भवन जर्जर सा
आँगन में पतझर के सूखे पत्तों का ममर-सा
आतिथेय के रुद्ध कण्ठ में स्वागत का घर्घर-सा
यह स्थिति लखकर अकुलाहट हो क्या न अतिथि के मन में ?
प्राणों के पाहुन आए औ लौट चले इक क्षण में।

शून्य अतिथिशाला यह हमने रच-पच क्यों न बनाई ?
जग को अपनी शिल्प चातुरी हमने क्यों न जनाई ?
उनके चरणागमन स्मरण में हमने उमर गवाई,
अर्घ्य दान कर कीच मचा दी हमने अतिथि सदन में,
प्राणों के पाहुन आए औ' लौट पड़े इक क्षण में।

वे यदि रंच पूछते क्यों है अतिथि कक्ष यह सीला ?
वे यदि तनिक पूछते क्यों है स्फुरित वक्ष यह गीला ?
तो हो जाता ज्ञात उन्हें है यह उनकी ही लीला,
है पंकिलता आज हमारी माटी के कण-कण में,
प्राणों के पाहुन आए औ' लौट चले इक क्षण में।

अतिथि निहारें आज हमारी रीती पतझड़-वेला,
आज दृगों में निपट दुर्दिनों का है जमघट-मेला,
झड़ो और पतझड़ से ताड़ित जीवन निपट अकेला
हम खोए-से खड़े हुए हैं एकाकी आँगन में
प्राणों के पाहुन आए औ' चले गए इक क्षण में।

१ मई, १९४८ —'क्वासि' से

फागुन

अरे ओ निरगुन फागुन मास!
मेरे कारागृह के गम्य मन्दिर में मत कर वास
अरे ओ निरगुन फागुन मास!

यहाँ राग रस रंग कहाँ है?
झाँझ न मंजिर मृदंग यहाँ है
अरे चतुर्दिक फैल रही यह
मौन भावना जहाँ तहाँ है।
इस दुर्देश में मत आ तू रस वश हँसता सोल्लास
अरे ओ भोले फागुन मास!

कोल्हू में जीवन के कण कण
तेल तेल हो जाते क्षण क्षण।
प्रतिदिन चक्की के धमट में—
पिस जाता गायन का निक्वण
फाग सुहाग भरी होली का यहाँ कहाँ रस रास?
अरे ओ मुखरित फागुन मास!

गमबाँस की कठिन गाँस में
मूँज बान की प्रखर फाँस में

अटकी हैं जीवन की घड़ियाँ
यहाँ परिश्रम-रुद्ध साँस में।
यहाँ न फला तू वह अपना लाल गुलाल विलास
अरे अरुणार फागुन मास!

छाई जंजीरों की झन झन,
डंडा-बेड़ी की यह घन घन
गरे का घर्राटा फैला
यहाँ कहाँ पनघट की खन खन?
कैसे तुझको यहाँ मिलेगा होली का आभास
अरे हुरियारे फागुन मास!

यह निर्बंध भावना ही की,
चपल तरंगें अपनी जी की
इन तालों जंगलों के भीतर—
घुट घुट मतत हो गईं फीकी
अब तू क्या मदमाता ताडव करता है सायास?
अरे मस्तान फागुन मास!

२६ फरवरी, १९३१ —'क्वासि' से

प्राणार्पण[1]

है यह गाथा उस अवसर की जब मत्त हो उठे थे जन गण
जब हाय ! ठन गया था सहसा भाई भाई में भीषण रण
जब लोप हुआ था करुणा का हिंसा की बिजली कड़की थी
जब नाच उठी थी निर्दयता जब आग भयानक भड़की थी
जब लिए पलीता दौड़ थे जन आग लगाने घर घर में
तब की है यह मेरी गाथा जब प्रलय सा हुआ नश्वर में।

जो आज दिखाई देता है भोला सा सामाजिक प्राणी
जो सदा हिचकता रहता है जो कभी न करता मनमानी
वह पागल सा होकर कैसे बन जाता है शोणित पायी
क्योंकर इतना उच्छृंखल-सा हो जाता वह उत्तरदायी ?
उसकी करुणा उसकी ममता कैसे विलुप्त हो जाती है ?
उसकी वह अपनी मानवता क्योंकर सहसा खो जाती है ?

अपने अभिशप्त दृगों से हैं देखी मैंने वे घटनाएं
देखी हैं इन आंखों से वे अति घोर राक्षसी रचनाएं,
वे घटनाएं मज्जा नयपथ, वे घटनाएं शोणित मज्जित
जिनका टुक स्मरण मात्र करके मनु संतति होवेगी लज्जित।
मैं भी हूं आखिर एक अंश इस गरलमयी मानवता का
हूं किसी रूप में मैं भी तो कुछ दायी इस दानवता का।

---

१ श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की दुःखद मृत्यु से मर्माधन खण्ड काव्य 'प्राणार्पण' का एक अंश।

मजदूर लिये अपना नम्बर पीतल का या कि छपे टिन का,
बेभरम सड़क पर जाता है, वह भूखा है सारे दिन का,
पत्नी-बच्चों से मिलन के मन में लड्डू खाता जाता,
कर याद जिगर के टुकड़ों को, मन ही मन है वह मुस्काता,
इतने ही में अनजान में है छुरी चमकती कातिल की,
एक आह निकलती है औं' बस, धड़कन रुक जाती है दिल की

देखा है एक दृश्य जिसकी स्मृति कर देती है हिय व्याकुल,
मन में विषाद छा जाता है मर मर जाती है ग्लानि विपुल
मैंने देखा जो घुसते ही सुनसान एक घर के अन्दर
वीभत्स दृश्य, कर याद जिसे अब भी कँप जाता अन्तरतर,
था खून सनालय भरा हुआ काला, गड्ढों में उस घर के
थे लम्बे लम्बे बाल पड़े ये किसी मुइयों के सर के।

थे देखे रक्त में लथपथ वे दीवारें थीं शोणित रंजित,
कोई कोना भी उस घर का था नहीं दुष्ट-कृति से वंचित
थी पड़ी रक्त में सनी हुई टूटी बिखरी चूड़ियाँ वहाँ
माला वाली थी बहिन कहाँ? चूड़ी वाली माँ गयी जहाँ!
आँगन में एक कुआँ भी था उसमें कुछ थ भनकती थी।
जो दानवता की घृणित कथा कहने न तनिक भी थकती थी।

रह गया धर्म महत्त्व इतना? क्या दीन यही? ईमान यही?
कहलाता है क्या धर्म भाव मानवता का अपमान यहाँ?
साधारणतः हिंसक पशु भी निज सजातीय के रक्षक हैं
एक हम मानव हैं जो कि हाय, बनते अपने ही भक्षक हैं!
सो भी स्वधर्म की छाया में, ले नाम मजहबी ईमाँ का,
हम गला काटने चलते हैं ईश्वर के बन्दे इन्सां का।

दुश्मन कोई न किसी का है, परिचय भी नहीं किसी दिन का
ऐसों-एसों को हनते हैं सबध रहा न कभी जिनका,

दाढी या चुटिया, या धोती या पजामा अथवा तहमत
य बाह्य चिह्न ही है यथष्ट जन क हान को हत, आहत ।
कितनी विकरानी दानवता नर का कितना कठोर वतन !
कितना राक्षसी क्रूर, निदय धर्मान्ध भाव का यह नतन ।

इतना गजन इतना तजन इतना घषण इतना धषण
इतना मदन मदमनशील यह अध पतन का आकषण
य घृणित धम क घटाटोप य घृणित दान की आकृतिया,
ये सब मिलकर कर रह आज मानव की भ्रष्ट विकृत कृतिया
अबलाओ अरक्षिताओ की हत्या करना बन गया धम
पथ भ्रष्ट अनजान जन का उत्सादन है कतव्य-कम ।

मन जो दखा यह प्रचड दानवता का उत्पात घोर
जा दखा कि है कहा न यहा इस क्रूर कम का ओर छोर
तो मरा दिल बठन लगा आखो म अधकार छाया
नराश्य जगा उत्साह मरा पड चली शिथिल मरी काया।
ऐसा कुछ भान हुआ मानो बरसो का यह अनवरत काम
बकार हुआ है और मिटा जाता है मानव धम नाम।

हिन्दू मुस्लिम हो एक और हिन्दू मुस्लिम की जय जय हो
भाई भाई मिल चल और सदियो का सब पाप क्षय हो।
य सतत प्ररणाए मन की य नित्य तदथ कम निरलस
बकार लगे दिखन उस क्षण जब जन धर्मान्ध हुए बरबस
जब धीर आत्म विश्वास हिला तब आप तुम्हारा स्मरण हुआ
तब चिता याद आयी, आया फिर याद चिता का कृष्ण धुआ।

लपटें उठती थी लपक लपक उठता था धुआ घुमडता-सा
बरबस रोक थाम थ जन नैनो का स्रोत उमडता सा
उस ज्वलित चिता की ज्वाला म हमन दखा तव प्रण प्रचण्ड
उन लपटो म हमन दखा तव पुण्य धम पालन अखड

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

तुम वन लिए अपना दीपक इस घोर अँधेर में भी जब
तब क्या हो विचलित ओ निराश तवपन अनुगामी जब हम सब ?

तुमने देखा थी विभीषिका तुमने यह ताडव देखा था
अपनी आँखों से ही तुमने नर को पशु बनते देखा था
तुमने होली जलते देखी, बन्धन ढील पडते देखे,
तुमने देखा घोरारम्य निरा भाई भाई लडते देखे,
उस महानाश की होली में फिर भी निर्भय तुम कूद पडे,
मानव की मानवता रतन, प्राणों की बाजी लगा अडे।

तुमने समझा नर को सन्तत श्री नारायण का अंश सदा।
मानव समाज तुमने समझा हिंसक पशुओं का वश कदा ?
तुमने कब मानी परा प्रकृति शोणित नयपथ, नख स्वद्रमती ?
तुमने कब माना कि है प्रकृति हिंसानुर मज्जा रक्त मती ?
ये सब दुर्दान्त, कृतान्त, भ्रान्त सिद्धान्त न थे तुम पर हावी
तुम तो थे महा या तदर्शी तुम थे चिर सत्पथ के दावी।

मानव हिय की वदना यही, मानव का है यह त्रास महा
करता है पाप पुण्य निशि दिन उसके शोणित में रास महा
क्षण में श्रद्धा क्षण अविश्वास, क्षण उत्थापन, क्षण अधःपतन
क्षण मानवता क्षण दानवता यह है मानव का मानवपन।
जग उठती है शोणित लिप्सा लाद विट विर कर उठती है।
क्रूरता और निर्दयता में उसकी छाती भर उठता है।

क्षण भर में ही हो जाती है ननों की तरलता विलुप्त
क्षण भर में ही हो जाती है यह जागरूकता भी सुषुप्त
ज्वालाओं में परिणत होती श्वासोच्छ्वासों की स्निग्ध धार
मो-सा जान है सद्विचार उठ उठ आते हैं हिय विकार
निम्नता वृत्ति यह मानव की तुमने समझा न चिरस्थायी
समझा हो नहीं कभी तुमने इस मानव को शाणित पायी।

उर्मिला[1]

लक्ष्मण बिछोह से हिय में
जग गई साधना तप की,
आँसू के मिस अंतर से
श्रद्धा कर अंजलि टपकी
यह अवधि दीप बन आई।
पीतम स्मृति दीपक बाती।
हिय लगन जगी लौ बन के
मंजुल पराग फैलाती
इस समय प्रतीक्षा मग में
उर्मिला लिए निज दीपक
बैठी है जागन बन के
नित बाट जोहती अपलक।

आकांक्षा की आँधी
भय अविश्वास के बादल
कम्पित करते रहते हैं
स्मृति दीप शिखा को प्रतिपल
दृढ़ श्रद्धाचल से रक्षित
वह ज्योति अखंड जगी है
बुझने की कभी नहीं वह
लौ ऐसी भली लगी है
योगिनी सतत जपती है
अपने योगी की माला,

---

१ उर्मिला महाकाव्य से एक अंश

आँसू से बुझा रही है
वह अन्तरतर की ज्वाला।

लुट गई उर्मिला पल में
देकर अपना जीवन धन
पिय के बिछोह की लपटें
बन आइ यग ज्वालागान
विरहानलमय मरुथल में
खिल उठीं तपस्या कलियाँ,
हिय धड़कन बनी सुमरनी,
सम्मृति बन गई अँगुलियाँ
वनवास अवधि के दिन गिन।
मन के बन गए बड़े से।
हो गए प्राण कुछ आकुल
कुछ कुछ उखड़े उखड़े से।

क्रन्दन निस्पन्दन व्रण की
विस्तृत सी करुण कहानी
विठुन र समय पटल पे
लिख रही उर्मिला रानी
आँसू स्याही बन आए
मसि भाजन नैन बने थे
बन गए पद गाथा के
संकल्प विकल्प घने थे
कम्पित लेखनी बनी है
उर्मिला हृदय की धड़कन
गम्भीर बिछोह व्यथा से
व्याकुल है कोमल तन मन।

बालकृष्ण शर्मा नवीन

है बनी उर्मिला—पीड़ा
उसकी अपनी ही बीती
हो गई त्वंच्य कर उसमें
चर अचर व्यथा सब रीती
उसकी वह विरह व्यथा में
बिम्बित है जग की करुणा
उस के हृदय स्पन्दन में
है विश्व वेदना अरुणा
जग का यों अलग अलग-सा
सक्रम ही विछुड़नमय है
लक्ष्मण का विपिन गमन ही
उर्मिला वियोग निलय है।

संस्मरण सघन घन छाए
नयनों से बरस पड़े ये।
मन नभ में निःश्वासों के
झंझानिल में भगे ये
मानस निभृत में उठती
स्मृति मय मानिका गहरी
उठ चली टीस बिजली सी
आहत मिस घन ध्वनि गहरी
झंझावत तरणि किरण सो
चमकी आशा रह रह के
हृत्यावान में तप्त कर
मित मौन पपीहा चहके।

सुख संस्मृतिमय वह जीवन
बन गया क्षणिक मुग्ध सपना

रह गया उर्मिला के हिग
वस नन्दन नाम का जपना
अपना ममत्व तुम्हा कर
मानवता के चरणा मे
उर्मिला जा गई मन्ना
दुख के जन आवरणा मे
पिय विरह जनित नित दुख मे
जीवन बन गया उलहना।
जीवन का ध्यय बना है
यह विपय वन्ना महना।

अपने पावन का छवि का
नयना मे बिम्ब उनार
बठी है लक्ष्मण राना
प्रतिबिम्ब हिय मे धार
यह आख-मिचौना-क्रीडा
यह अपनत्व अनेक सुगावन
यन्ना-गामिनी बन के
बरसाता है निज सावन
उठ उठ कर लहराता है
ये मनावनियाँ बाना
बन गई निमिप मे महमा
उजियाली भी अधियाली।

स्मृ के सस्मरणों के य
गरवील ममा बरस
जिनन वरम उनन हो
य प्राण-पपीह तरस

मूसलाधार धाराएँ
उठ धाइ मन अम्बर स
वेदना हूक उठ आई
जगती क अंतरतर स
आँधी पानी पंकिल पथ
जीवन म मिले घनरे
दुख सार भूत बन आए
जीवन क साझ सवेरे

छिन दामिनियाँ छिन गजन,
छिन धाराएँ छिन बादल
छिन उपल विपुल छिन कुहियाँ
छिन उथल पुथल अति चचल
यो ही उर्मिला सलोनी
नित बिता रही निज जीवन
आकुलता से पूरित है
उनक जीवन क क्षण क्षण
मन विकल, प्राण य बेकल
हिय व्याकुल चित विरहाकुल
उर्मिला - वेदना अमिता
उमडी नयना म ढुल ढुल ।

चल देख, कल्पने उनको
सध्या क मौन क्षणा म
चुपक चुपके नत हो जा
उनक युग श्रीचरणा म,
वठी हैं देवि सुमित्रा,
करक शुचि सध्या वदन

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन

उमड़ी नि:श्वास हठीली,
धड़का हिय का निस्पन्दन,
अनबोली - सी बैठी है
पार्श्व में उर्मिला भोली,
ज्यों निपट धीरता के ढिंग
बैठी करुणा अनबोली।

दिन थककर मुरझ गया है
सन्ध्या के पल अंचल में,
श्रम श्रान्ति व्यथा उमड़ी है
खग-वृन्दों के कल कल में
गोधूली की वेला में
धूमिल-सा हुआ दिगम्बर
छाया औदास्य हृदय में
कँप उठी वेदना थर थर
डर डर कर धर पग धीरे
नभ में अँधियाला आया
लुट चला उजेला छिन में
बढ़ चली तिमिर की छाया

संस्मरण विहंगम आए
हिय नीड़ निलय में अपने
कलरव से मानस अम्बर—
लग गया निमिष में कँपने,
क्या दरद पराया जाने
यह साँझ-साँझ अलबेली ?
सुख-स्मृति बटोर लाती है
नित यह बेदरद अकेली,
मधुमय सैंजों की स्मृतियाँ
हिय की चुप चुप प्रिय बतियाँ

सन्ध्या वाले अंचल में
लगती हैं कुछ मुरतियाँ।

ये कुछ मधुर घटिकाएँ
कल्पना मेरी लहराती
सन्ध्या के सूने क्षण में
आ जाती हैं मदमाती
अभिशाप रूप बन जाते
सुख के संस्मरण निराले
दुखदाई हो जाते हैं
ये अति दुलार के पाले
बैठा है मास-यहू ये
सन्ध्या के नीरव क्षण में
जीवन की कसक कहानी
उठती है उनके मन में।

करुणा की इन छवियों के
कल्पने, साक्ष्य दर्शन कर
चुपके तू मेरी चली आ
उनकी पद रज सिर पर धर
चिर विरह वेदना की है
यह उलझी हुई कहानी
फिर कभी उसे सुलझाना
सुन मेरी कल्पने रानी।
दर्शन कर दीक्षित हो जा
तू करुण रहस्य अगम में
तब गाना विरह कथानक
कंपित स्वर कोमलतम में।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

गीत

मन मन में गायन-स्वन भर दो ।
मरु कण कण को रस निर्झर दो ।

प्राण प्रणोदन निम्न गमन रत,
जीवन में उत्पीड़न शत शत
जड़ उद्धत चेतन क्षत विक्षत
इनको अरुज अनामय कर दो
मन मन में गायन-स्वन भर दो ।

स्वेद स्वेद में क्लिन्न मनुज-तन
छिन्न भिन्न उसका अपनापन,
खिन्न म्लान कुण्ठित संवेदन
मृण्मय तृण को चिन्मय कर दो
मरु-कण-कण को रस निर्झर दो ।

सम-लय-यति-गति ताल राग रति
यह जग-जन जीवन की सद्गति
हुई विकृत, विभ्रमित अनति अति
इस उदात्त ऋतम्भर स्वर दो ।
मन-मन में गायन-स्वन भर दो ।

बने असुन्दर सुन्दर मन्मय
क्षिप्त चित्त बन जाए तन्मय
रज कण तपकर बने हिरण्मय
या इस क्षर को पद अक्षर दो ।
मरु-कण-कण में मधुर रस भर दो ।

दिसम्बर, १९५७

—'आजकल' में

मेरे जन-नायक की वाणी

गहन नील अम्बर म गरजी मेरे नायक की वाणी
अनिल, अनल जल, थल म तरजी मेरे जन-नायक की वाणी।

जागो जागो, अमृत सुवन तुम जागो, जागो सोन वालो
जागो तुम सिंहो क छौनो, जागो सब कुछ खाने वालो।
जागो ग-काल निर्माता, जागो तुम निज भाग्य विधाता
जागो इतिहासो क ज्ञाता जागो तत्त्व ज्ञान के दाता
जागो हिंदू सिख मुसलमान जागो मेरे मानव प्राणी
अनिल अनल जल-थल म गरजी यो मम जन-नायक की वाणी।

हिमगिरि स टकराकर व्यापी इस वाणी की ध्वनि जग भर म
गूजी यह ध्वनि जग मनुजा क हृदय म अतरतर म
गरजा हिंद महासागर की प्रतिध्वनिमय उत्ता न तरगें
जग क महार्णवों म उमडी अभिनव वाचि विलास उमगें
लेकर यह स देश सुहावन चहुँदिशि वहा हवा रस-मानी
गहन नाल अम्बर म गरजी मेरे जन नायक की वाणी।

य नव-नव उद्बोधन क स्वर नवनिर्माण प्ररणाकारी
य आत्मार्पण क पावन स्वन ये नित नवल स्फूर्ति सचारी
महानाद रा यह सदश यह निजत्व प्राप्ति का निमत्रण।
यह अस्वीकृति की गभीर ध्वनि यह विप्लव का रुद्र प्रभजन
अब तक तुमन कहा न सुनी यह भय भजन वाणी कल्याणी ?
गहन नील नभ म गरजी है मेरे जननायक की वाणी।

बालकृष्ण शर्मा नवीन'

मेरा पूरब, मेरा पश्चिम, मेरा दक्षिण, मेरा उत्तर,
मेरी गंगा, मेरी यमुना, मेरे सखा, मेरे भूधर,
आज सभी ये उद्घोषित हैं मेरे जन-नायक के स्वन से।
गूंजी है यह मंद महा ध्वनि युग-युग के सागर-मंथन से।
यह वाणी है मम मानव के अमर प्राण की अमिट निशानी,
अनिल अनल-जल-थल में गरजी मेरे जन-नायक की वाणी।

'काव्य-कुंज' से

विप्लव गायन

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आए एक हिलोर उधर से आए
प्राणों के लाले पड़ जाएँ
त्राहि त्राहि रव नभ में छाए
नाश और सत्यानाशों का—
धुआँधार जग में छा जाए
बरसे आग जलद जल जाए
भस्मसात भूधर हो जाए
पाप पुण्य सदसद् भावों की
धूल उड़ उठे दायें बायें
नभ का वक्षस्थल फट जाए—
तारे टूक-टूक हो जाएँ
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाए।
माता की छाती का अमृत
मय पय कालकूट हो जाए
आँखों का पानी सूखे
वे शोणित की घूँट हो जाए
एक ओर कायरता काँपे
गतानुगति विगलित हो जाए
अन्धे मूढ़ विचारों की वह
अचल शिला विचलित हो जाए
और दूसरी ओर कँपा देने
वाला गर्जन उठ धाए

अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक
तर्जन की ध्वनि मँडराए
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाए

नियम और उपनियमों के ये
बंधन टूक-टूक हो जाएँ
विश्वम्भर की पोषक वीणा
के सब तार मूक हो जाएँ,
शान्ति-दण्ड टूटे उस महा-
रुद्र का सिंहासन थर्राए
उसकी श्वासोच्छ्वास-दाहिका
विश्व के प्रांगण में घहराए
नाश! नाश!! हा महानाश!!! की
प्रलयंकरी आँख खुल जाए
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाए।

सावधान! मेरी वीणा में
चिनगारियाँ आन बैठी हैं
टूटी हैं मिजराबें अंगुलियाँ
दोनों मेरी ऐंठी हैं।
कंठ रुका है महानाश का
मारक गीत रुद्ध होता है
आग लगेगी क्षण में, हृत्तल
में अब क्षुब्ध युद्ध होता है
झाड़ और झंखाड़ दग्ध हैं—
इस ज्वलंत गायन के स्वर से
रुद्ध-गीत की क्रुद्ध तान है
निकली मेरे अन्तरतर से!

कण कण में है व्याप्त वही स्वर
राम राम गाता है वह ध्वनि
वही तान गाती रहती है
कालकूट फणि की चिंतामणि
जीवन-ज्योति लुप्त है—अहा!
सुप्त हैं संरक्षण की घड़िया,
लटक रही हैं प्रतिपल में इस
नाशक संभक्षण की लड़िया।
चकनाचूर करो जग को गूंज
ब्रह्माण्ड नाश के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है
निकली मेरे अंतरतर में!
दिल को मसल-मसल मैं मेंहदी
रचता आया है यह देखो
एक एक अंगुलि परिचालन
में नाशक ताण्डव को देखो!
विश्वमूर्ति! हट जाओ!! मेरा
भीम प्रहार सहे न सहेगा
टुकड़े टुकड़े हो जाओगी
नाशमात्र अवशेष रहेगा
आज देख आया हूं—जीवन
के सब राज़ समझ आया हूं
भ्रू विलास में महानाश के
पोषक सूत्र परख आया हूं
जीवन गीत भुला दो—कंठ
मिला दो मृत्यु गीत के स्वर से
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है
निकली मेरे अंतरतर से।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

असिधारा-पथ

ओ असिधारा पथ के गामी !
विकट सुभट तुम अथक पथिक तुम कण्टक-कीलित मग अनुगामी
ओ असिधारा-पथ के गामी !

तुम विकराल मृत्यु आसन के साधक तुम नव जीवन दानी
तुम विप्लव के परम प्रवर्तक चरम शान्ति के निष्ठुर स्वामी !
ओ असिधारा-पथ के गामी !

शत-शत शताब्दियों के पातक पुंज हो रहे पानी-पानी
अंजलि भर भर जीवन शोणित देने वाले ओ निष्कामी !
तुम असिधारा-पथ के गामी !

हे प्रचण्ड उद्दण्ड अखण्ड महाव्रत के पालक विज्ञानी
तड़प उठा है सब जग जरा ठहर जाओ हे मौन प्रणामी !
तुम असिधारा-पथ के गामी !

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

मेह की झडी लगी

मेह की झडी लगी नेह की घडी लगी।
हहर उठा विजन पवन
सुन अश्रुत आमन्त्रण
डोला वह यों उन्मन
ज्यों अधीर स्नेही मन
पावस में गीत जग गीत की कडी जगी!
तड-तड तड तडित चमक—
झिगि दिगि भर रही दमक
घन गर्जन गूंज गमक—
जल धारा झूम झमक
भर रही विषाद हिय चकित कल्पना ठगी!
श्यामल मंथर नीलाम्बर
आर्द्र बादर चादर
अर्घ्य दे रहा सादर—
जल गागर पर गागर
भक्ति नीर सिक्त भूमि स्नेह सजना पगी
अम्बर से भूतल तक
तुमको खोजा अपलक
क्यों न मिले अब तक?
ओ मेरे अनत अलख!
बुद्धि मलिन प्राण चकित व्यंजना ठगी ठगी
मेह की झडी लगी नेह की घडी लगी।

फरवरी, १९५२ —'वीणा' से

परिशिष्ट-१

'नवीन' जी के जीवन से सम्बन्धित कुछ प्रमुख घटनाएँ

१८९७ (८ दिसम्बर) जन्म मध्यभारत के शाजापुर परगने के भयाना गांव में

१९०८ शिक्षा प्रारम्भ

१९१३ शाजापुर के अंग्रेजी मिडिल स्कूल में अभिनीत चन्द्रगुप्त नाटक में चन्द्रगुप्त का अभिनय
मिडिल की परीक्षा पास करके आगे पढ़ने के लिए उज्जैन गए।

१९१६ मई में विवाह। लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में गणेशशंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी से और मैथिलीशरण गुप्त से भेंट।

१९१७ पत्नी की मृत्यु। मैट्रिक पास करके कालेज की शिक्षा के लिए कानपुर गए। पहली कविता 'जीव ईश्वर वार्तालाप' की रचना। 'प्रताप' में सह-सम्पादन।

१९१८ 'सरस्वती' में 'संतू' कहानी प्रकाशित। पहली बार 'नवीन' उपनाम का उपयोग।

१९२० 'प्रताप' साप्ताहिक दैनिक हुआ। जोशीली लेख माला।

१९२१ सत्याग्रह आन्दोलन में सम्मिलित, कालेज छोड़कर प्रथम जेल यात्रा। कारागार बनारस।

१९२२ कारावास लखनऊ।

१६२३ 'प्रभा' के सम्पादक। कारावास कापुनर। पिता का देहान्त।
१६२५ कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन के प्रबन्धकर्त्ताओं में।
१६३० दो बार जेल-यात्रा कानपुर गाजीपुर।
१६३१ कानपुर के हिन्दू मुसलिम दंगे में विद्यार्थीजी की मृत्यु। 'प्राणार्पण' काव्य की रचना। 'प्रताप' के सम्पादक। मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति।
१६३१-३४ कारावास फैजाबाद अलीगढ़ बरेली।
१६३६ कानपुर नगर कांग्रेस समिति के अध्यक्ष।
१६३८ उत्तरप्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री।
१६३६ गणेश शंकरजी की कन्या के कपड़ों में आग लगने पर प्राण की बाजी लगाकर उसे बचाया। प्रथम कविता संग्रह 'कुंकुम' का प्रकाशन।
१६४२-४५ कारावास केन्द्रीय कारागार बरेली।
१६४६ केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य।
१६४७ माता का देहान्त।
१६४६ जुलाई की ७ तारीख को दूसरा विवाह कुमारी सरला से।
१६५० ब्रज साहित्य मण्डल के सहारनपुर अधिवेशन की अध्यक्षता।
१६५१ मध्य भारत पत्रकार परिषद् के अध्यक्ष। रश्मिरेखा (कन्या का जन्म)। 'रश्मि रेखा' का प्रकाशन। हृदय रोग का पहला आक्रमण।
१६५२ कानपुर से लोकसभा के सदस्य निर्वाचित। 'अपलक' और 'क्वासि' का प्रकाशन। मध्यभारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति।
१६५३ 'विनोबा-स्तवन' का प्रकाशन।
१६५४ उत्तरप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता।
१६५५ केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित राजभाषा आयोग के सदस्य। 'उर्मिला' महाकाव्य का प्रकाशन। पक्षाघात। ११ सितम्बर को बम्बई जाते समय अंतिम कविता लिखी।

१९५६ संसदीय और प्रशासनिक शब्दों के निर्माण के लिए गठित समिति के सदस्य।

१९५७ संसदीय हिन्दी परिषद् के उपाध्यक्ष। उर्मिला का प्रकाशन।

१९५८ पक्षाघात का दूसरा आक्रमण। पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित। साहित्यकारों द्वारा दिल्ली में अभिनंदन समारोह।

१९६० राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित। २६ अप्रैल को पद्मभूषण उपाधि का प्रमाण-पत्र और स्वर्ण-पदक प्राप्त। २९ अप्रैल को निधन।

१९६२ प्राणार्पण का प्रकाशन

१९६४ हम विषपायी जनम के का प्रकाशन।

परिशिष्ट-२

'नवीन' जी की रचनाएं

	रचना	प्रथम संस्करण
१	कुंकुम	१९३९ ई०
२	रश्मि रेखा	१९५१ „
३	अपलक	१९५२ „
४	क्वासि	१९५२
५	विनोबा स्तवन	१९५३
६	उर्मिला (काव्य)	१९५५
७	प्राणार्पण	१९६२ „
८	हम विषपायी जनम के	१९६४ „

१९५६ मसदीय और प्रशासनिक शब्दों के निर्माण के लिए गठित समिति के सदस्य।

१९५७ मसदीय हिन्दी परिषद के उपाध्यक्ष। उर्मिला' का प्रकाशन।

१९५८ पक्षाघात का दूसरा आक्रमण। 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित। साहित्यकारों द्वारा दिल्ली में अभिनंदन समारोह।

१९६० राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित। २६ अप्रल को पदम भूषण' उपाधि का प्रमाण पत्र और स्वर्ण-पदक प्राप्त। २९ अप्रल को निधन।

१९६२ प्राणार्पण का प्रकाशन

१९६४ हम विषपायी जनम के का प्रकाशन।

परिशिष्ट-२

'नवीन' जी की रचनाएं

रचना		प्रथम सस्करण
१	कुकुम	१९३९ ई०
२	रश्मि रेखा	१९५१,
३	अपलक	१९५२'
४	क्वासि	१९५२'
५	विनोबा स्तवन	१९५३'
६	उर्मिला (काव्य)	१९५५
७	प्राणार्पण	१९६२,
८	हम विषपायी जनम के	१९६४'